RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20/पृष्ठ संख्या 44/प्रकाशन तिथि 26 जुलाई 2020/ पोस्टिंग तिथि 29 जुलाई

बाल विज्ञान पत्रिका, अगस्त 2020

चकमक

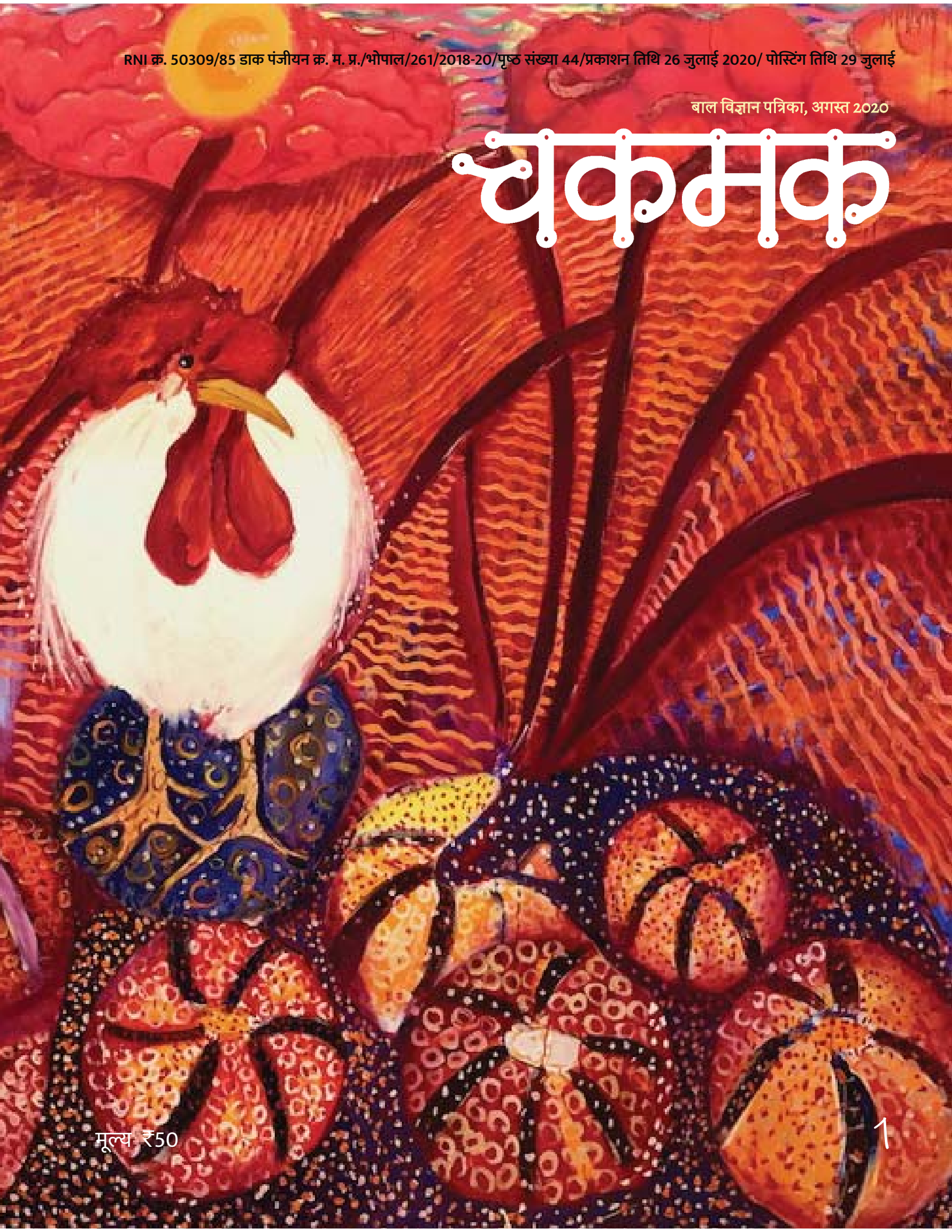

मूल्य ₹50

घबरू घड़ियाल के 'घड़े' को कुछ कहना है!

रोहन चक्रवर्ती

क्या तुम्हें पता है कि नर घड़ियाल के थूथन में एक 'घड़ा' होता है? इससे ये बुलबुले बनाते हैं और बातचीत के लिए गरजती हुई आवाज़ें भी निकालते हैं।

घड़ियाल कौन हैं?

गंगा के बेसिन में रहने वाले मछलीखोर जीव

विलुप्ति की कगार पर खड़ी एक प्रजाति, वयस्क घड़ियालों की संख्या 200 से भी कम है

हमारी नदियों के गौरव

नदी के ईकोसिस्टम के स्वस्थ होने के सूचक

घड़ियाल गायब क्यों हो रहे हैं?

उनके इलाके नष्ट हो रहे हैं

मछली पकड़ने वाले जाल में वे फँस जाते हैं

रेत के खनन के कारण

बाँध और बैराज बनने के कारण

शिकार के कारण

घड़ियालों को कैसे बचाया जा सकता है?

उनके इलाकों को बचाकर

उनकी जनसंख्या की निगरानी करके

उनकी जनसंख्या बढ़ाकर

उनके संरक्षण में मछुआरे समुदाय के लोगों को शामिल करके

अंक 407 • अगस्त 2020

चकमक

इस बार

घबरू घड़ियाल का घड़ा ... - रोहन चक्रवर्ती - 2
मुकू की दास्तान - निराली लाल - 4
इस दुनिया को किसने और ... - सी एन सुब्रह्मण्यम् - 8
क्यों-क्यों - 10
कालू - वृशाली जोशी - 13
खोई-पाई चीज़ों से बुनाई - सजिता नायर - 16
आकाशगंगा के यात्री - लोकेश मालती प्रकाश - 18
किताबें कुछ कहती हैं - 20
फुर्तीली गिलहरियाँ - नेचर कॉन्ज़र्वेशन फाउंडेशन - 22
टेलीफोन केबल से भूकम्प संवेदी - 24
एक गिलहरी की खोज में - विनता विश्वनाथन - 25
बोरेवाला - जयश्री कलाथिल - 28
भूलभुलैया - 31
मेरा पन्ना - 32
माथापच्ची - 38
चित्रपहेली - 41
तुम भी जानो - 43
लाल कलंगी - प्रभात - 44

आवरण चित्र: निराली लाल

सम्पादन
विनता विश्वनाथन

सह सम्पादक
कविता तिवारी
सजिता नायर
कनक शशि

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

डिज़ाइन
कनक शशि

डिज़ाइन सहयोग
इशिता देबनाथ बिस्वास

सलाहकार
सी एन सुब्रह्मण्यम्
शशि सबलोक

सहयोग
अभिषेक दूबे

एक प्रति : ₹ 50
वार्षिक : ₹ 500
तीन साल : ₹ 1350
आजीवन : ₹ 6000
सभी डाक खर्च हम देंगे

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चेक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण:
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
एकलव्य फाउंडेशन, जाटखेड़ी, फॉर्च्यून कस्तूरी के पास, भोपाल, मध्य प्रदेश 462 026
फोन: +91 755 2977770 से 3 तक; ईमेल: chakmak@eklavya.in, circulation@eklavya.in
वेबसाइट: https://www.eklavya.in/magazine-activity/chakmak-magazine

मुकू की दास्तान

चित्र व आलेख:
निराली लाल

अनुवाद:
लोकेश मालती प्रकाश

खुशियों भरी गुलाबी फर की गेंदें

तीन साल से कुछ ज़्यादा पुरानी बात है। एक दिन गुलाबी, पीले और नीले फूलों की टोकरी जैसे दिखने वाले एक ठेले से निकलकर चीकू और मुकू मेरी ज़िन्दगी का हिस्सा बन गए।

उन नर्म और नाज़ुक चूज़ों को मैंने अपने हाथ में भर लिया। और उनको नीचे रखते ही हड़कम्प मच गया। मधुमक्खियों की तरह वे पूरे घर में नाचने लगे। इधर-उधर सरकते-फिसलते वो अपनी नई दुनिया की खोज करने लगे।

उनका ध्यान अपनी तरफ खींचने के लिए मैंने उनको अंगूर दिया – एक दाना चीकू को और एक दाना मुकू को। लेकिन दूसरे की थाली में हमेशा ज़्यादा घी दिखाई देता है इसलिए दोनों एक ही दाने के लिए आपस में उलझ पड़े!

उन दिनों लोग मुझसे पूछते थे कि मैं उनमें अन्तर कैसे कर पाती हूँ क्योंकि दिखते तो दोनों एक जैसे ही हैं, बिलकुल गुलाबी फर की गेंद जैसे। लेकिन मज़ेदार बात यह है कि उन दोनों का व्यक्तित्व बिलकुल अलग था। चीकू काफी हद तक 'चूज़े' जैसा था। अधीर। हमेशा मुकू से भिड़ता रहता था। दूसरी तरफ, मुकू किसी मुर्गी की तरह शान्त व फिक्रमन्द रहता था। और सभी अच्छी चीज़ें खुशी-खुशी चीकू को मन भर खा लेने देता था।

ज़िन्दगी अपनी रफ़्तार से चलती रही और ये दोनों उसका अभिन्न हिस्सा बन गए। उनका गुलाबी रंग धीरे-धीरे फीका पड़ गया। टॉयलेट पेपर के इस्तेमाल की नई आदतें बन गईं। मेरे अपार्टमेंट में चारों तरफ गन्दे-शन्दे अखबार और रेत बिखरी रहती।

शुरुआती महीनों में मेरे दिमाग में एक उलझन लगातार बनी रही... 'ये मुर्गे बनेंगे या मुर्गियाँ?' यह सस्पेंस बेहद रोमांचक था। कुछ महीनों बाद एक सुबह मुझे 'कुकडू-कू' की बाँग सुनाई दी और इस रहस्य से पर्दा उठा। "तो ये मुर्गा है," मेरी नज़र पड़ी। और वह भी एक नहीं, दो-दो मुर्गे! दिलचस्प और मासूम से इन मुर्गों ने माहौल को तरोताज़ा, चुनौतियों से भरपूर और रोमांचक बना दिया। चूज़े बड़े होकर शानदार कलगी वाले खूबसूरत मुर्गे बन गए।

मुकू की पहचान

दुर्भाग्य से चीकू एक दिन खेलते-खेलते मारा गया (दुनिया को अलविदा करने का यह अच्छा अन्दाज़ है)। मुकू अकेला रह गया। वैसे तीसरी मंज़िल की बाल्कनी से बाहर निकले एसी पर रहने वाला एक गिलहरी परिवार कभी-कभार उससे मिलने आता रहता है।

और हाँ, मुकू के साथ मैं भी तो थी। एक इन्सान। मुझे कभी-कभी ऐसा महसूस होता है कि वो इन्सानों की तरह सोचता है, या यह सोचता है कि

वो भी इन्सान है। या फिर शायद वह यह सोचता है कि हम सब चूज़े हैं। जब आसपास ज़्यादा इन्सान हों तो वह ऐसे ही व्यवहार करता है। वह सबसे घुलना-मिलना पसन्द करता है। काफी हद तक अपने कुत्ते दोस्त पेपे की तरह।

मुकू मेरे आसपास एक कल्पना लोक बुनकर उसमें करतबों का चित्रमय नाटक पेश करता है। बेरोकटोक मनोरंजन। बातचीत करते हुए वो कभी कुड़कुड़ाता है, कभी कुकडू-कू करता है तो कभी पंख फड़फड़ाता है। हर सुबह वो मुझसे इस तरह मिलता है जैसे दशकों बाद देख रहा हो! देर रात की पार्टियों में वो हमारे बीच बैठा रहता है। गीत-संगीत सुनता है, टीवी देखता है। और जगे होने पर अपनी तरफ ध्यान खींचने में तो वो उस्ताद है। हर समय बीच में आता रहेगा खास तौर पर जब मैं पेंटिंग या कोई दूसरा ज़रूरी काम कर रही होती हूँ... और चूँकि वो थोड़ा बहुत उड़ भी सकता है इसलिए जब मैं सोफे पर पैर ऊपर की तरफ मोड़कर बैठी होती हूँ तब वो अचानक मेरे ऊपर कूद पड़ता है।

वो बिल्ली की तरह जिज्ञासु हो सकता है और मुर्गे की तरह आलसी तो वो है ही! मुझे लगता है कि मेरी काली चप्पल उसको मुर्गियाँ लगती हैं। कभी-कभार वो बड़ी नज़ाकत से उन पर चोंच मारता है। चोंच मारना उसे पसन्द है। वो बड़ा पोज़ेसिव भी है। जब मैं दूसरी चप्पल पहनती हूँ, खास तौर पर लाल रंग की, तो वो बहुत नाराज़ हो जाता है। शायद उसे लगता हो एक और मुर्गा! यानी खतरा। और फिर वह गुस्से में मुझे

और हाँ, मुकू के साथ मैं भी तो थी। एक इन्सान। मुझे कभी-कभी ऐसा महसूस होता है कि वो इन्सानों की तरह सोचता है, या यह सोचता है कि वो भी इन्सान है। या फिर शायद वह यह सोचता है कि हम सब चूज़े हैं।

चारों तरफ दौड़ाता है। इसलिए मैं पिछले काफी समय से वही एक जोड़ी चप्पल पहन रही हूँ। चूँकि उसकी नज़र मेरे पैरों की उँगलियों पर रहती है इसलिए मैं हमेशा बेचैन रहती हूँ।

संयोग से यह बेचैनी मेरे लिए चित्रकारी की सबसे बेहतर प्रेरणा है और मेरे अशान्त स्वभाव के लिए एक आदर्श प्रोत्साहन भी। वह मेरे स्टुडियो में ही रहता है। उसे वहाँ रहना पसन्द है। उसके साथ ही मैं वहाँ काम करती हूँ। वह हमेशा सामने आता रहता है – कभी आवाज़ की तरह, कभी किसी शाही अन्दाज़ में, मिट्टी के टब या अपनी बीट में करतब करता या फिर अपना चिरपरिचित शाही मुर्गा नृत्य करता हुआ। इन हरकतों से मेरा ध्यान टूट जाता है। अजीब बात यह है कि इससे मुझे अपना चित्र बनाने के लिए ज़रूरी ऊर्जा और अवकाश मिलता है।

मुकू की पहली रेल यात्रा

एक बार मैं मुकू को एक आर्ट प्रोजेक्ट में अपने साथ ट्रेन से ले गई थी। मैंने फर्स्ट क्लास में सफर किया। मैंने हम दोनों के एक साझे इन्सान दोस्त को भी अपने साथ चलने को कहा क्योंकि मुकू को खास देखभाल की ज़रूरत पड़ सकती थी। मुझे इसकी तैयारी करनी थी। कितनी सारी चीज़ें थीं जिनका ध्यान रखना था। 'मुकू मुर्गे' को दूसरे शहर ले जाने के लिए 'यात्रा के लिए फिट' होने के दस्तावेज़ बनवाना। यात्रा का बजट बढ़ गया था।

इन्सानों की बनाई दुनिया में इन्सान ढल सकते हैं। आखिर ये बनी तो हमारे लिए है। जानवरों के लिए नहीं। तो हम वैसा ही सोचते-समझते हैं जैसा सोच-समझ सकते हैं। लेकिन इस कठिन दुनिया में मुकू ने अपनी जगह बना ली है। मुकू के पास एक उद्देश्य है, अपने किरदार में रहते हुए इस नाटक में शामिल हो जाना। और मुकू के साथ खास व्यवहार करना ही इस स्थिति से जूझने का मुझे सबसे बेहतर तरीका लगा।

मैंने एक ऐसे पैलेस ऑन व्हील्स (जो इन्सानी अवधारणा है) की कल्पना की जो जानवरों के लिए बना हो जिसमें हम इन्सान उनकी खातिरदारी कर रहे हों। इस यात्रा में मुकू की खातिर करते हुए मुझे ऐसे ही एक इन्सान होने का एहसास हुआ। हम यह सब झेल सकते हैं। हम माहौल के हिसाब से ढल सकते हैं। इन्सान थोड़े बनावटी अन्दाज़ में ही सही एक-दूसरे के साथ थोड़ा सामंजस्य बना सकते हैं। लेकिन पालतू जानवरों की तो सेवा करनी पड़ती है। वे बच्चों की तरह होते हैं। वे 'अपनी तरह' ही रहते हैं। ट्रेन की उस खुली जगह में मुकू को कितना मज़ा आया था, एकदम किसी मुर्गे की तरह।

मुकू, मेरी दुनिया

कोविड के इस दौर में मेरा सारा ध्यान मुकू पर ही रहता है और यह हम दोनों को पसन्द है। ऐसा एक भी पल नहीं होता जब वो मेरे आसपास न हो। अक्लमन्द मुकू दोपहर को बिस्तर पर कूदकर ज़ोर-से मुझे सोने के लिए बुलाता है ताकि मेरे पैरों पर सर रखकर वो भी सो सके। उसे पता है कि सोना शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए कितना ज़रूरी होता है!

कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि अगर मुकू को कुछ हो गया तो क्या होगा? डरना इन्सानी फितरत है। मुकू के लिए कोई कानूनी कार्यवाही नहीं होगी। किसी से कोई पूछताछ नहीं की जाएगी। क्योंकि वह इन्सान नहीं है। सिर्फ कुछ दोस्त मेरे टूटे दिल को सहलाएँगे।

हमें लगता है कि मुकू एक उत्पाद है। जिसे हम छोटे खुदाओं ने बनाया है। पाँच रुपए के ये चूज़े बाज़ार में इफरात में मिलते हैं, रोज़ाना पचास लाख के करीब। लेकिन मेरी दुनिया में सिर्फ दो ही गुलाबी चूज़े आते हैं – चीकू और मुकू। मुकू मुर्गा बन जाता है। मेरी दुनिया में वो अपनी दुनिया बना लेता है।

अन्त में मैं इतना ही कहूँगी, "एक चूज़ा उठाओ और अपनी ज़िन्दगी बदल डालो।" मुकू ने तो मेरी ज़िन्दगी वाकई बदल दी है।

इस दुनिया को किसने और क्यों बनाया?

सी एन सुब्रह्मणयम्
चित्र: राही डे रॉय

क्या इस दुनिया को ईश्वर ने बनाया?

अगर वह है, तो हमें दिखता क्यों नहीं?

अगर वह दिखता नहीं, तो हम उस पर विश्वास क्यों करें?

तुम्हारे जैसे कई बच्चों ने ऐसे या इससे मिलते-जुलते सवाल किए हैं। इसके दो सरल उत्तर हो सकते हैं। पहला उत्तर यह कि यह दुनिया अपने आप ही बन गई और इसलिए इसका कोई मकसद नहीं है। बस, यूँ ही है। चूँकि इसे किसी भगवान ने नहीं बनाया इसलिए वह हमें दिखता नहीं है।

दूसरा उत्तर यह हो सकता है कि इस दुनिया को किसी शक्तिमान, बहुत ज्ञान वाले भगवान ने बनाया। अपने मज़े के लिए या फिर अच्छाई को स्थापित करने के लिए। वह हमें दिखता नहीं है क्योंकि वह नहीं चाहता कि सब उसे देख पाएँ (शायद कुछ लोगों को दिख जाता है, मगर हमें ठीक-ठीक पता नहीं)।

मज़े की बात यह है कि इन दोनों जवाबों को सही या गलत सिद्ध करने का कोई तरीका नहीं है। न तो हम भगवान के होने का सही प्रमाण दे सकते हैं, न भगवान के न होने का। मान लो कोई आकर हमसे कहता भी है, "मैं भगवान हूँ और मैंने इस दुनिया को बनाया है," तो क्या हम उसकी बात मान लेंगे? इसी प्रकार अगर मैं कहूँ कि भगवान है ही नहीं, तो मैं इसका क्या प्रमाण दे सकता हूँ?

भगवान में विश्वास को लेकर एक बड़ा सवाल यह है – अगर भगवान सब कुछ जानता है, सर्व शक्तिमान है और अच्छाई चाहता है तो दुनिया में बुराई, दुख, अन्याय क्यों हैं? वह इन्हें खतम क्यों नहीं करता? भगवान में जो विश्वास करते हैं उनके लिए इसका उत्तर कठिन नहीं है। वे मानते हैं कि यह भगवान की लीला है, वह हमारी परीक्षा लेता है। वह आज बुराई को पनपने देता है, मगर अन्त में अच्छाई को ही जिताएगा वगैरह-वगैरह।

तो यह मनुष्य के विश्वास की बात है कि वह भगवान को मानता है या नहीं। बहुत लोग यह गहराई से मानते हैं कि भगवान है और उसे पाना (दर्शन करना, महसूस करना, उसमें लीन होना) हमारे जीवन का उद्देश्य है। और बहुत लोग उतनी ही गहराई से यह मानते हैं कि भगवान नहीं है और हमें अपने जीवन का मकसद अपने ही विवेक से और एक-दूसरे के हितों को ध्यान में रखते हुए तय करना है।

हम ऐसे सवाल क्यों करते हैं?

आश्चर्य की बात यह है कि मनुष्यों ने इन सवालों को हर काल में और हर समाज में पूछा है और अपने-अपने तरीके से इनका जवाब देने की कोशिश भी की है। तो शायद इस बात पर विचार करना उपयोगी होगा कि हम इन सवालों को क्यों पूछते हैं और इनके जवाब हमारे लिए क्यों महत्वपूर्ण हैं? और इनके इतने अलग-अलग जवाब क्यों हैं?

मनुष्य होने के नाते हमारी दो ज़रूरतें हैं – पहली, हमें दुनिया को समझना है और दूसरी, हमें उस पर कुछ क्रिया करनी है। तो दो तरह के सवाल हमारे सामने हमेशा खड़े रहते हैं – एक ये, कि दुनिया कैसे बनी, कैसे काम करती है, कैसे बदलती है, कुछ हुआ तो क्यों हुआ...? और दूसरा, कि हमें क्या करना है और क्यों करना है?

इन सवालों के जवाबों पर ही हमारा सब कुछ टिका हुआ है। ये दोनों सवाल हमें विज्ञान व जीवन दर्शन की ओर और साथ ही भगवान में विश्वास व धर्म की ओर भी ले जाते हैं। अक्सर विज्ञान व दर्शन से उभरी समझ को हम भगवान पर आरोपित करते हैं और धर्म की समझ से उभरी बातों को विज्ञान व दर्शन पर।

इन महत्वपूर्ण सवालों के जवाब अधिकांश समय हमारे समाज की ऊँच-नीच (महिला-पुरुष, अमीर-गरीब, मालिक-मज़दूर, जाति, धर्म, राष्ट्र...) की बातों से प्रभावित हो जाते हैं। समाज में जो ताकतवर लोग होते हैं वे चाहते हैं कि सब लोग यह मान लें कि उन्हें यह ताकत ईश्वर से मिली है और सब को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। दुनिया में ऊँच-नीच है क्योंकि भगवान ने इसे ऐसा ही बनाया है। तो वे कुछ खास तरह की बातें हमारे कर्तव्यों में जोड़ देते हैं।

इसी तरह समाज के ताकतवर लोग विज्ञान और दर्शन का भी अपने हित में उपयोग करते हैं। वे जताते हैं कि यह दुनिया तभी सुचारू रूप से चलेगी जब सब उनकी बात मान लें क्योंकि यही तर्कसंगत है।

वहीं गरीब या वंचित लोग भी इन विचारों का प्रतिरोध करते हैं और कहते हैं कि ईश्वर बुराई, अन्याय और असमानता का पक्ष नहीं ले सकता। वह गरीबों का हिमायती है, अमीरों का नहीं। या फिर यह कि असमानता, अन्याय, भेदभाव तार्किक नहीं हैं, इनकी वजह से समाज को सुचारू रूप से चलाने में मुश्किलें आती हैं और समाज बिगड़ जाता है। वास्तव में समाज को समानता, न्याय, स्वतंत्रता और भाईचारे से चलना चाहिए...।

इस तरह की विरोधाभासी सोच और उसे लेकर जो वाद-विवाद होते हैं उनके कारण ही भगवान के बारे में इतनी विविध धारणाएँ बनती-बदलती रहती हैं।

क्यों क्यों

क्यों-क्यों में इस बार का हमारा सवाल था —
इस दुनिया को किसने बनाया है, और क्यों?

कई बच्चों ने हमें अपने जवाब भेजे। इनमें से कुछ तुम यहाँ पढ़ सकते हो। तुम्हारा मन करे तो तुम भी हमें अपने जवाब लिख भेजना।

अगले अंक के लिए सवाल है —
हम सभी ने कभी ना कभी कोई ना कोई झूठ बोला है। ऐसा कौन-सा झूठ है जिस पर तुम्हें कभी अफसोस नहीं हुआ, और क्यों?

अपने जवाब हमें chakmak@eklavya.in पर मेल कर सकते हो या 9753011077 पर व्हाट्सऐप भी कर सकते हो।

चाहो तो अपने जवाब हमें डाक से भी भेज सकते हो। हमारा पता है —
चकमक, एकलव्य फाउण्डेशन,
जाटखेड़ी, फॉर्चून कस्तूरी के पास,
भोपाल - 462026. मध्य प्रदेश

इस दुनिया को रंग-बिरंगी, प्यारी-प्यारी तितलियों ने बनाया क्योंकि जब ये दुनिया नहीं बनी थी तब हम सारे नटखट बच्चे आसमान में थे और हमें तितलियों के पंखों पर सजा ये प्यारा-प्यारा रंग इतना भाता था कि हम उनके पीछे-पीछे दौड़कर उन्हें पकड़ने लगते थे। इस चक्कर में हमें चोट भी लग जाती थी और तितलियों को भी दुख होता था। इसलिए उन्होंने फूलों से रंग चुराकर पहले अपने पंखों में ढेर सारे रंग भरे। फिर अपने चमकीले पंखों से एक पूरी की पूरी दुनिया बना दी जिसमें उन्होंने पहले हमारे मम्मी-पापा को भेजा, फिर हमें ताकि वो सब मिलकर हमारी इस खूबसूरत दुनिया का खयाल रख सकें। और हमें रंगों की तलाश में तितलियों के पीछे तितली बन भागना ना पड़े क्योंकि हम बच्चे हैं ना, तो हम बहुत जल्दी थक जाते हैं। तो इस प्यारी-सी दुनिया को बनाने के लिए तितली रानी को ये तो कहना ही पड़ेगा

सुन्दर-सुन्दर, प्यारी-प्यारी
ओ हमारी तितली रानी
साथ यूँ ही रहना तुम हमारे
तुम बिन फीके जग सारे

श्रेया कुमारी, किलकारी बिहार बाल भवन, सैदपुर, पटना, बिहार

भगवान को अपना दिमाग खराब करना था। इसलिए उसने दुनिया बनाई।

अंशिका तिवारी, चौथी, होली लाइट अकादमी, देवास, मध्य प्रदेश

दुनिया को सूरज ने बनाया क्योंकि उसे बहुत अकेलापन महसूस हो रहा था तो उसने सभी ग्रहों को भी बनाया।

स्वर्ण दीप बामनिया, आठवीं, केन्द्रीय विद्यालय, देवास, मध्य प्रदेश

मुझे लगता है कि करोड़ों साल पहले ब्रह्माण्ड में बड़े-बड़े राक्षस आपस में बात-बात पर युद्ध करते होंगे। जब युद्ध शान्त हुआ होगा तो एक राक्षस ने अगले युद्ध में दूसरे राक्षस पर प्रहार करने के लिए एक बड़ा-सा आग का गोला बनाया होगा। उसी बीच किसी दिन भारी वर्षा हुई होगी और वह आग का गोला ठण्डा हो गया होगा। और पृथ्वी बन गई होगी। आग के गोले को ठण्डा देख दूसरा राक्षस पहले राक्षस से युद्ध करने आया होगा। और पहले राक्षस ने उस सुन्दर ठण्डी पृथ्वी को दूसरे राक्षस पर फेंक दिया होगा। इतनी बड़ी पृथ्वी जाकर दूसरे राक्षस के सिर पर लगी होगी। वह राक्षस वहीं मर गया होगा और हमारी पृथ्वी नारंगी की तरह चपटी हो गई होगी, जो आज भी है।

राज आर्यन, सातवीं, किलकारी बिहार बाल भवन, सैदपुर, पटना, बिहार

लोगों का मानना है कि दुनिया भगवान ने बनाई है। लेकिन वैज्ञानिकों का मानना है कि यह दुनिया एक हादसे से बनी है। अब अगर दुनिया भगवान ने बनाई है तो हमारे मन में यह सवाल आता है कि क्यों बनाई है। कुछ लोगों का मानना है कि दुनिया रहने के लिए नहीं बनी थी। हमारे समाज में कई धर्म हैं, जैसे कि हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई। हिन्दू धर्म का मानना है कि दुनिया उनके भगवान ने बनाई। मुसलमानों का कहना है कि दुनिया उनके अल्लाह ने बनाई। इसी तरह हर धर्म के लोगों का अलग-अलग मानना है। मुझे लगता है कि असलियत में शायद किसी को नहीं पता दुनिया किसने और क्यों बनाई।

अरमान, आठवीं, दीपालया लर्निंग सेंटर, संजय कॉलोनी, दिल्ली

इस दुनिया को हवा, पानी व मिट्टी ने बनाया है। जब पृथ्वी पर कुछ नहीं था तो यहाँ कई सालों तक बारिश हुई। फिर पानी यहाँ आया। इसके बाद धीरे-से हवा और मिट्टी भी आए। फिर मनुष्य का जन्म होने लगा। पहले हम बन्दर थे। कई सालों तक बदलाव होते-होते मनुष्य का रूप लेने लगे। यह दुनिया बनी तो हवा, पानी और मिट्टी से पर अभी इस पर राज कोरोना वायरस कर रहा है।

आरजू, सातवीं, अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

इस दुनिया को हम इन्सानों ने मिलकर बनाया है और इसलिए बनाया है कि हम इस दुनिया में रहकर सम्पूर्ण रूप से जी सकें। व ऐसी ही और भी दुनिया बनाई जा सके।

मनीष, आठवीं, दीपालया कम्युनिटी लाइब्रेरी, दिल्ली

मुझे तो लगता है कि दुनिया बनाने का काम भगवान को मिला होगा। पर उन्हें बहुत काम होगा इसलिए उन्होंने यह काम एक लड़की और चित्रकार को सौंप दिया होगा। लड़की ने कड़वे, मीठे, तीखे लोग, पशु-पक्षी, वनस्पति इनका कच्चा रेखांकन कर दिया होगा और सोचा होगा इन्हें चित्रकार को रंगने दें। मुझे तो लगता है यह दुनिया बच्चों को ध्यान में रखकर बनाई गई है। यह हम जैसे तीखे, नटखट बच्चों की प्रगति व शिक्षण के लिए बनी है।

ईश्वरी फडतरे, सातवीं, प्रगत शिक्षण संस्थान, फलटण, महाराष्ट्र

इस दुनिया को भगवान ने बनाया है। पहले धरती बनाई। फिर जानवर को बनाया। फिर इन्सान को बनाया। ताकि हम सब लोग एक साथ रह सकें और खुश रह सकें।

अंशिका तिवारी, चौथी, होली लाइट अकादमी
देवास, मध्य प्रदेश

इस दुनिया को भगवान ने बनाया। भगवान ने इसलिए दुनिया को बनाया होगा कि सब लोग दुनिया में रहें। बच्चे खेलें और स्कूल जाएँ। भगवान दुनिया में अकेले न रहें इसलिए दुनिया व और लोगों को बनाया।

परीणिति चमोली, दूसरी, सेंट एंथनी स्कूल
खोरा कॉलोनी, गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

यह दुनिया भगवान ने बनाई क्योंकि भगवान करोड़ों साल पहले अकेले बैठ-बैठ बोर हो गए थे इसलिए उन्होंने इन्सान, जानवर, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, हवा-पानी सब बनाया।

ऐश्वर्या, तीसरी, एस डी एम सी स्कूल, हौज़ खास
दिल्ली

बड़ा मुश्किल होता है आसान सवालों का जवाब ढूँढ़ना। मैं जब आँगन में बैठता हूँ तो सोचता हूँ – हो न हो यह दुनिया किसी आँगन से शुरू हुई होगी, जहाँ प्यार की हर गन्ध होती है। पायलों की झनक, चेहरों की रौनक बहुत गहरी मालूम पड़ती हैं। जैसे कोई अथाह गहरा कुआँ हो।

शाम ढलते ही, रात बिछते ही, तारों के चमकते ही और मेरी निंदिया आने से पहले ही न जाने कितने शब्दों की लड़ी चल पड़ती है किसी किस्से का रूप लेकर। मैं चुपचाप दादाजी के कन्धों पर अपना सिर रखे रहता हूँ। फिर सोचता हूँ... हो न हो यह दुनिया किसी किस्से का एक सुन्दर दृश्य है, जिसे बेशक किसी बुज़ुर्ग होंठों ने गढ़ा होगा।

जब मेरे उदास हाथों की सुनसान लकीरें शान्त रहती हैं, तो दादीमाँ की खूँटों में हलचल हो उठती है।

सिक्के उतर पड़ते हैं मेरे हाथों पर। मेरी मुट्ठी पकड़ती हुई मुस्करा पड़ती हैं दादीमाँ और धीरे-से मैं भी।

तब सोचता हूँ... हो न हो यह दुनिया दादीमाँ की बड़ी-सी एक पोटली है, जिसमें कई रहस्य हैं। जो खुल रहे हैं धीरे-धीरे। सुबह जब आँखें खुलीं तो माँ की गोद में था। फिर याद आया मैं सोया तो कहीं और था और वर्तमान के पल में जीने लगता हूँ। तब सोचता हूँ... हो न हो यह दुनिया प्रेम का बड़ा सागर है। जिसे अपनों ने बनाया है, मेरे तैरने के लिए।

और अगर नहीं तो यह दुनिया एक भ्रम है, जिसे दूसरे भ्रम ने बनाया है। ताकि जीने वाला मिटाता रहे धीरे-धीरे...

प्रवीण कुमार, दसवीं, किलकारी बिहार बाल भवन, सैदपुर, पटना, बिहार

कालू

प्रस्तुति: वृशाली जोशी
चित्र: इशिता देबनाथ बिस्वास

कालू बस्ती में अकेला रहता था। वह दिन भर इधर-उधर घूमता रहता। कभी किसी का मटका गिरा देता। कभी सूखने रखी दाल तितर-बितर कर देता, तो कभी टँगे हुए कपड़े ज़मीन पर गिरा देता। दुनिया भर में घूम-घामकर वह कबीर बाबा की दुकान के सामने पसर जाता। वहाँ बैठा मछलियों की महक सूँघता रहता। कभी-कभार कबीरबा उसे मछली का टुकड़ा दे देते तो घण्टों तक उसे चूसता रहता। आजकल उसने मछली पाने का नया तरीका ढूँढ़ निकाला है। जब भी कोई कबीरबा से मछली खरीदकर ले जाता, कालू धीमे-धीमे उनके पीछे चलने लगता। अगली गली में उनके थैले पर झपट्टा मारता और मछली का एकाध टुकड़ा तो पा ही लेता। अब तक उसने दो-तीन बार तो ऐसा कर ही लिया था।

एक दिन सुबह-सुबह उसने देखा कि एक आदमी मछली लेकर दुकान से निकला। कालू चौकन्ना हो गया और धीरे-से उस आदमी से पहले ही अगली गली में पहुँच गया। जैसे ही वो आदमी उस गली में पहुँचा कालू फुर्ती-से थैले पर झपटा। और थैला मुँह में पकड़कर भाग गया। वो आदमी बहुत परेशान हुआ। कुछ दूर कालू के पीछे भागा भी। पर कालू तो तेज़ दौड़कर दूर निकल गया। उस आदमी के पास और मछली खरीदने के लिए पैसे नहीं थे। तो वह अपने घर की ओर चलने लगा। कालू ने मछली खाई और दूसरे कामों में लग गया। इस गली में आते समय उसने किसी झोंपड़ी के सामने कुछ सूखता हुआ देख रखा था। उसने सोचा, "वहीं जाना ठीक रहेगा।"

अगले दिन कालू हमेशा की तरह घूम रहा था। घूमते-घूमते वह कुछ दूर पहुँच गया। उसने देखा कि एक जगह पर काफी भीड़ लगी है। "चलो, देखते हैं वहाँ क्या हो रहा है" ऐसा सोचते हुए कालू भीड़ के पास पहुँच गया। वहाँ कुछ औरतें इकट्ठे बैठकर रो रही थीं। कुछ आदमी भी इधर-उधर खड़े होकर धीमी आवाज़ में बातें कर रहे थे। एक औरत उनके बीच में आँगन में ही सो रही थी। कालू सोच ही रहा था कि यहाँ क्या हो रहा है तभी एक औरत चिल्लाई, "हम तो

आखिरी बार मछली भी नहीं खिला पाए। कितना मन था उनका मछली खाने का। हम कुछ भी नहीं कर पाए उनके लिए।" एक आदमी उस औरत के पास आया और बोला, "हमसे जो बन पड़ा हमने किया। माँ को मुक्ति मिल गई।"

कालू को आश्चर्य हुआ।

"अरे! ये तो वही आदमी है जिसकी मछली मैंने कल गटकाई थी।"

"लगता है इसकी माँ गुज़र गईं।"

"ओहो! तो ये आदमी अपनी माँ के लिए मछली लेकर जा रहा था, और मैंने? ये तो बहुत बुरा हुआ। ये मुझसे क्या हो गया। ये तो गलत हुआ।"

कालू को बहुत बुरा लग रहा था। पर अब वो कुछ नहीं कर सकता था। वो कबीरबा की दुकान पर लौट आया। और चुपचाप एक कोने में सुन्न होकर बैठा रहा। कबीरबा को लगा कि उसे भूख लगी होगी। उन्होंने कालू को मछली दी। पर उसने मुँह छुपा लिया। उसे और भी ज़्यादा बुरा लगने लगा। "बाबा इतने प्यार से मुझे मछली देते हैं फिर भी मैंने उस आदमी की मछली ले ली। पर वैसे छलाँग लगाकर मछली लेने का मज़ा ही कुछ और है। मैं क्या करता?"

पूरा दिन और पूरी रात वह यही सब सोचता रहा। अगले दिन सुबह होते ही वह फिर से उस आदमी की झोंपड़ी के पास गया। वो आदमी और उसकी पत्नी बाहर ही बैठे थे। "मैं कल से काम पर चला जाऊँगा।" आदमी ने कहा। उसकी पत्नी रोने लग गई। बाद में आदमी भी

रोने लगा। कालू वहाँ से आकर पूरा दिन बस दुकान पर ही बैठा रहा।

अगली सुबह कालू कबीरबा का इन्तज़ार कर रहा था। जैसे ही कबीरबा ने दुकान खोली कालू उनके पास भागा। उनके पैरों के आगे-पीछे घूमने लगा। कबीरबा को समझ में आ गया कि आज कालू को मछली चाहिए। उन्होंने एक छोटी मछली उसे दे दी। कालू मछली मुँह में धरकर आदमी के घर की ओर भागा। झोंपड़ी में कोई नहीं था। शायद वो लोग काम पर गए थे। कालू दरवाज़े से अन्दर गया। उसने चूल्हे के पास मछली रखी। और वापिस कबीरबा की दुकान पर आकर बैठ गया। अगले दिन फिर वही, कबीरबा से मछली ली और उस आदमी के घर में रखकर आ गया।

कई दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। उस आदमी और उसकी पत्नी को समझ नहीं आ रहा था कि आखिर घर में मछली कहाँ से आ रही है। उसकी पत्नी रोज़ वो मछली किसी न किसी को दे देती। उन दोनों का मछली खाने का मन नहीं होता। उन्हें माँजी की याद आने लगती। एक दिन कालू जब झोंपड़ी के अन्दर से मछली रखकर बाहर आ रहा था तो उस आदमी ने कालू को देख लिया। उसने पत्थर उठाया और कालू की तरफ फेंका। कालू काँए-काँए करते हुए वहाँ से भाग निकला। जब वो आदमी झोपड़ी के अन्दर गया तो उसने देखा कि चूल्हे के सामने मछली रखी है। तब उसे सारा मामला समझ आ गया। वो सोचने लगा, "हो न हो यही कुत्ता घर में मछली रखकर जाता है।" शाम को उसकी पत्नी काम से वापिस आई। सारी कहानी सुनकर उसने कहा, "हो सकता है कि वो कुत्ता समझ गया हो कि उसकी वजह से माँजी की मछली खाने की इच्छा अधूरी रह गई। बेचारा पछता रहा होगा। इसीलिए हर रोज़ घर में मछली रखकर जाता है।" इस बात को सुनते ही वो आदमी कबीर बाबा की दुकान पर गया।

उनसे पूछा, "क्या एक काला कुत्ता आपसे हर रोज़ मछली लेकर जाता है?"

कबीरबा ने कहा, "अरे! वह तो कालू है। बच्चा था तब से मेरी दुकान के पास ही रहता है। क्या हुआ?"

आदमी ने पूरी कहानी सुनाई और कहा, "कल से आप उसे मछली न दें। आपसे यही विनती है।"

बाबा ने कहा, "जैसा आप ठीक समझें। पर शाम को ज़रूर कुछ खिला दिया करूँगा। कभी-कभी भूखा रह जाता है।"

वो आदमी घर लौटने लगा तो उसे अगले मोड़ पर कालू दिखा। उसने कालू को पकड़ा और अपने घर ले आया। उसकी पत्नी ने कालू को ताज़ी रोटी खिलाई। कालू को विश्वास नहीं हो रहा था कि रोटी इतनी मीठी हो सकती है। मछली को छोड़कर उसने हमेशा सूखा, बासी या सड़ा हुआ खाना ही खाया था। अब कालू के दो घर हो गए। कभी वह मीठी रोटी खाता तो कभी मछली।

बस्ती के लोग कह रहे हैं कि "आजकल कालू शैतानी नहीं करता।"

खोई-पाई चीज़ों से बुनाई

सजिता नायर

घर में जब भी सफाई होती है तो मेरी माँ मुझे ज़रूर डाँटती हैं कि ये क्या कबाड़ इकठ्ठा कर रखा है। अब भला उन्हें कैसे समझाऊँ कि वो कबाड़ नहीं, बल्कि काम की ही चीज़ें हैं। असल में हमारे आसपास ऐसी कई चीज़ें हैं जिन्हें हम या तो देखकर अनदेखा कर देते हैं या फिर उन्हें अपने काम का नहीं समझते। ये चीज़ें कुछ भी हो सकती हैं – पेड़ के पत्ते, टहनी, फूल, बीज या फिर कोई पुराना नट या टायर आदि। लेकिन कभी गौर करना कि जिन चीज़ों को हम कूड़ा समझकर बाहर फेंकते हैं, क्या वो सच में कबाड़ हैं? क्या उनसे कुछ नहीं बन सकता, कुछ भी नहीं? थोड़ा सोचोगे तो कोई न कोई आइडिया ज़रूर सूझेगा।

आजकल कई जगहों में खासकर रेस्तरां या खाने वाली कुछ दुकानों में लोग जगह को सजाने के लिए कबाड़ और प्राकृतिक चीज़ों का इस्तेमाल करते हैं। इसमें पैसा तो कम लगता है लेकिन मेहनत और दिमाग थोड़ा ज़्यादा लगता है। कुछ महीनों पहले मैं एक रेस्तरां गई थी। वहाँ पर एक खराब नल को लैम्प की तरह इस्तेमाल किया गया था। यह देखकर मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मुझे लगा कि मेरे जैसे और भी लोग हैं जिन्हें कबाड़, कबाड़ नहीं लगता। कई लोगों ने साधारण-सी चीज़ों को ऐसे रूप दिए हैं जो हम कभी सोचते भी नहीं। चीज़ों को देखने का मेरा नज़रिया ऐसे ही धीरे-धीरे बदला है। और इसका नतीजा है मेरे घर का कबाड़।

कबाड़ से कलात्मक चीज़ें बनाने का ऐसा ही एक ताज़ातरीन किस्सा तुम्हें बताती हूँ। अमलतास का पेड़ तो तुमने देखा ही होगा। हो सकता है तुम में से कुछ ने उसकी फल्लियों से खेला भी हो। तो एक शाम मैं और मेरे दोस्त अमलतास के फूल बीन रहे थे। तभी हम उसकी फल्लियाँ भी उठा लाए। हमने सोचा था कि इनको मंजीरे की तरह इस्तेमाल करेंगे। एक दिन मेरी दोस्त अस्फिया ने वो फल्लियाँ उठाईं और सोचा कि क्या इनसे 'विंड चाइम' बना सकते हैं? हमने थोड़ा सोचा कि कैसे बनाएँगे। इसी कोशिश में जब हम उन्हें साथ रखकर देख रहे थे तो अचानक से लगा कि इनसे तो एक मज़बूत फ्रेम भी बन सकता है। हमारी नज़र सुतली पर गई। हमें ध्यान आया कि सुतली की मदद से फल्लियों को साथ में बाँध सकते हैं। बस फिर क्या था, हमने फ्रेम बनाना शुरू कर दिया। इसका इस्तेमाल हम फोटो लगाने या फिर घड़ी बनाने के लिए भी कर सकते हैं।

तुम भी बनाओ

फिर अस्फिया ने सुझाया कि अगर इसमें हम खटिया वाली बुनाई करें तो कैसा लगेगा? आइडिया अच्छा था। बस हमारे मन में एक शंका थी कि फल्लियाँ तो गोल हैं जबकि खटिया आयताकार होती है। और इस कारण बुनाई करते वक्त रस्सी या सुतली खिसकती नहीं है। फिर हमने सोचा कोशिश करके देखते हैं। नहीं हुआ तो कुछ और बना लेंगे। हमने बने हुए खाँचे के अन्दर खटिया वाली बुनाई करनी शुरू कर दी। शुरुआत में थोड़ी मुश्किल हो रही थी क्योंकि हम दोनों ही बुनाई भूल चुके थे। फिर अपनी दोस्त सीमा की मदद से हमने धीरे-धीरे बुनाई पूरी कर ली। बुनाई पूरी होने पर हमें लगा कि अरे वाह! इसे तो ट्रे की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं या फिर एक छोटे मेज़ की तरह भी। फिर आखिर में तय हुआ कि इससे वॉल हैंगिंग बनाते हैं। तो हमने इसे टाँगने के लिए सुतली की मदद से साथ में एक और फल्ली जोड़ दी। अमलतास की फल्लियों और सुतली से बने इस वॉल हैंगिंग ने हमारे सामने एक नया ही विकल्प खोल दिया था।

कुछ दिनों बाद हम और फल्लियाँ लाए। मैंने सोचा क्यों ना इस बार कुछ अलग तरह की बुनाई की जाए। पिछली बार हमने थोड़ी दूर-दूर बुनाई करी थी, इसलिए इस बार मैंने एकदम पास-पास बुनाई करी। बुनाई करने के बाद एक बड़ी ही मज़ेदार बात देखने में आई। बुनाई के कसाव की वजह से मेरे आयताकार फ्रेम ने कुछ अलग ही रूप ले लिया था। यह दिखने में बड़ा ही रोचक लग रहा था। इससे भी मैंने वॉल हैंगिंग ही बनाई। इस बार मैं एक बॉक्स बनाने का सोच रही हूँ। अब बॉक्स ही बनेगा या फिर कुछ और, किसे पता? लेकिन यही तो मज़ा है न? क्या तुमने कभी ऐसा कुछ बनाया है? अगर हाँ तो मुझे ज़रूर लिखना। मैं भी तुम्हारे साथ कुछ न कुछ शेयर करती रहूँगी।

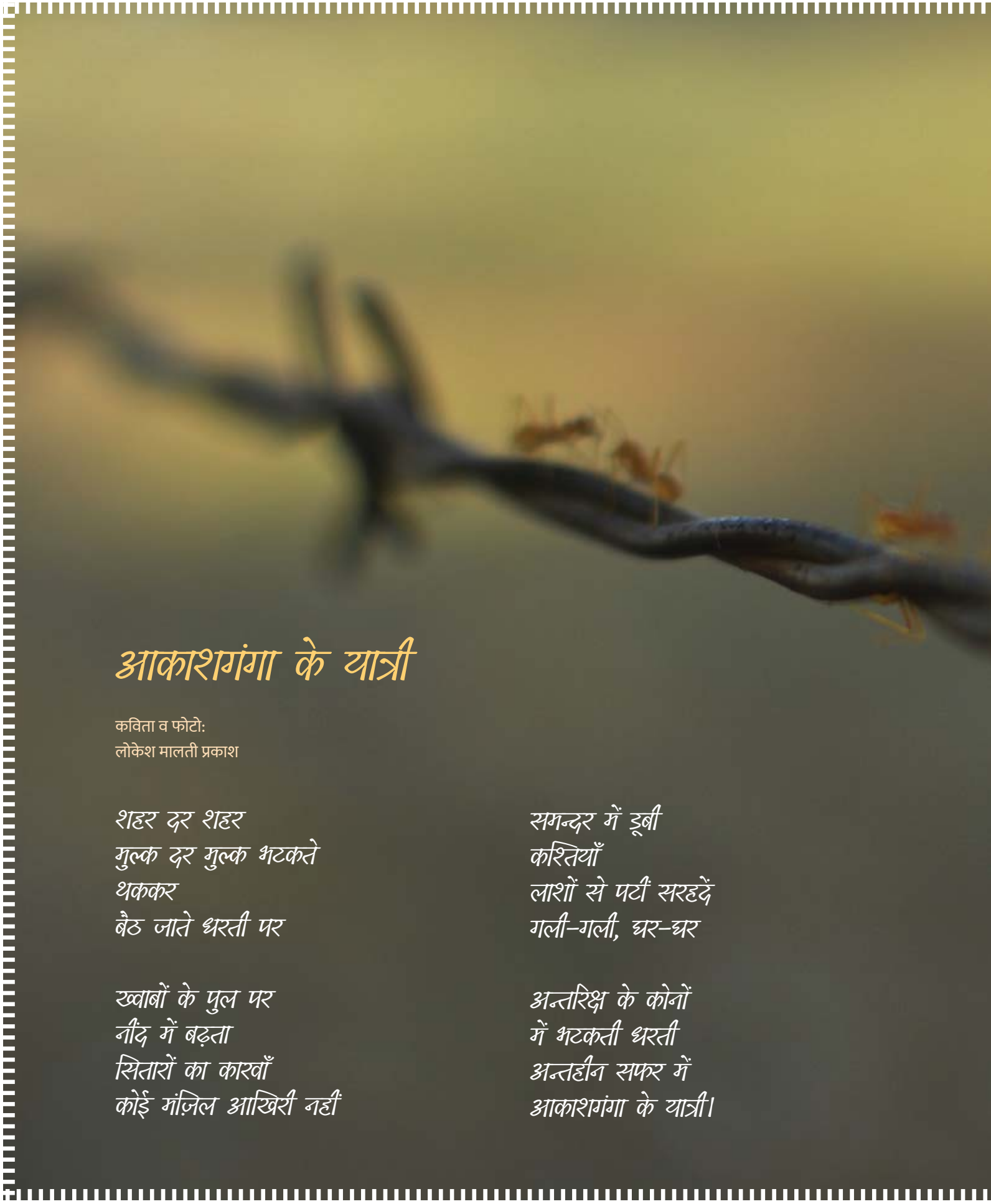

आकाशगंगा के यात्री

कविता व फोटो:
लोकेश मालती प्रकाश

शहर दर शहर
मुल्क दर मुल्क भटकते
थककर
बैठ जाते धरती पर

ख्वाबों के पुल पर
नींद में बढ़ता
सितारों का कारवाँ
कोई मंज़िल आखिरी नहीं

समन्दर में डूबी
कश्तियाँ
लाशों से पटीं सरहदें
गली-गली, घर-घर

अन्तरिक्ष के कोनों
में भटकती धरती
अन्तहीन सफर में
आकाशगंगा के यात्री।

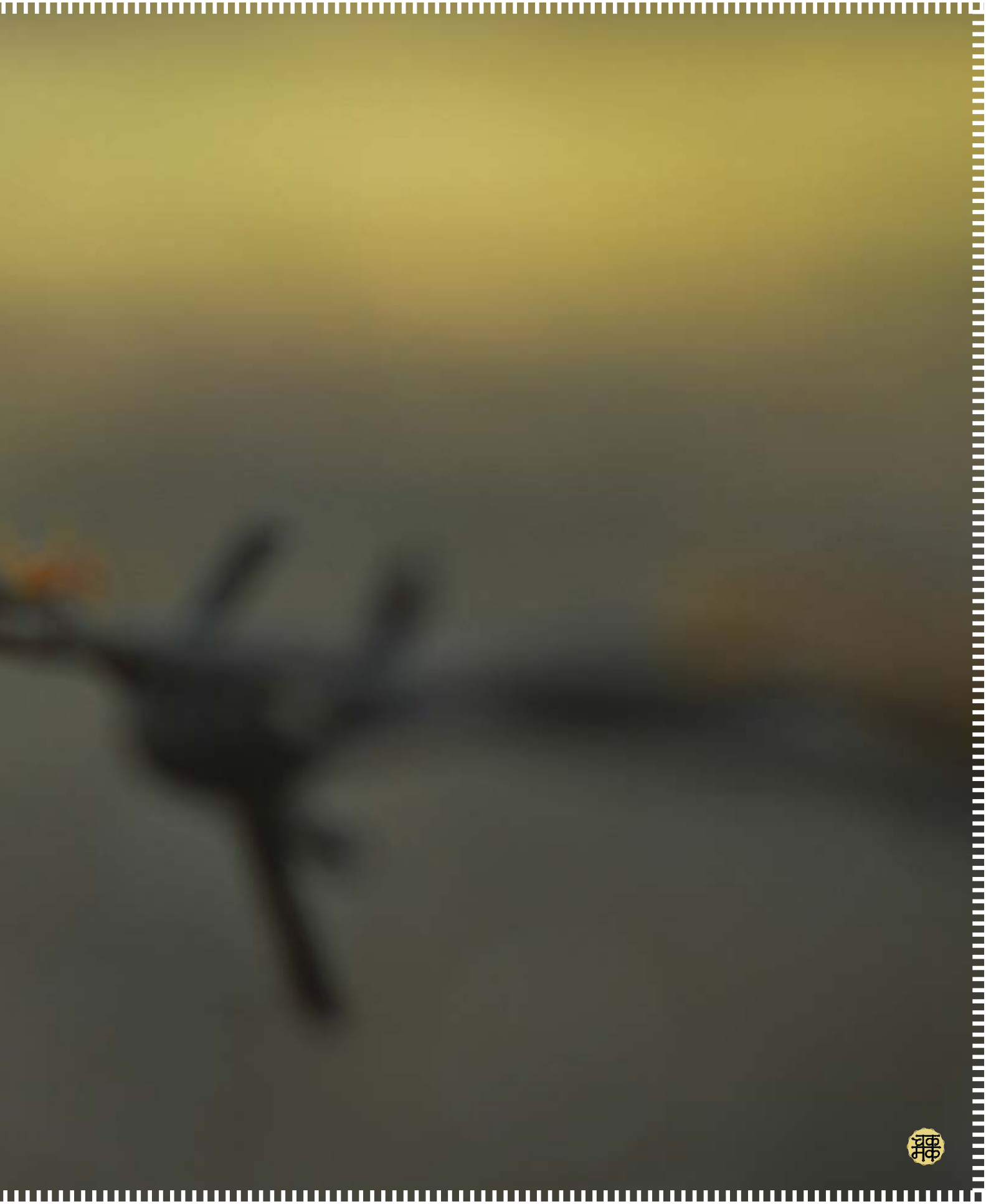

किताबें कुछ कहती हैं...

किताबों की दुनिया में जाने का एक रास्ता है किताबों की समीक्षाएँ। आम तौर पर इस कॉलम के लिए बच्चे अपने पसन्द की किताबों की समीक्षाएँ हमें भेजते हैं। इस बार हमने कुछ बच्चों को एक किताब भेजी और उनकी राय माँगी। तुमने भी अगर कोई किताब या कोई कहानी-कविता वगैरह पढ़ी हो और उसके बारे में तुम कुछ कहना चाहो तो, हमें लिख भेजना। क्या अच्छा लगा और क्या अच्छा नहीं लगा... हम तुमसे सुनना चाहेंगे।

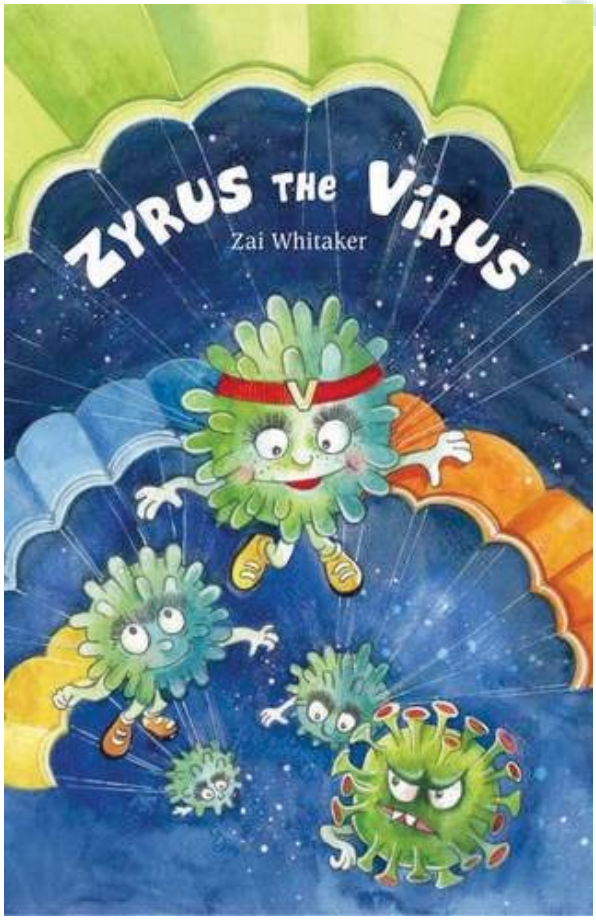

ज़ायरस द वायरस

लेखक: ज़ाई व्हिटेकर
चित्रकार: नीलोफर वाडिया
प्रकाशक: तूलिका
समीक्षा: सिद्धार्थ चौधरी, छठवीं
दिल्ली पब्लिक स्कूल, नीलबड़, भोपाल, मध्य प्रदेश

यह किताब ज़ायरस नाम की एक वायरिज़न (वायरूली के नागरिक) के बारे में है। उसे अचानक से वायरूल महासभा के सामने कोरोना द्वारा मचाई जा रही खलबली के बारे में अपने खयालों को व्यक्त करते हुए भाषण देना था। इसके बावजूद कि उसने पहले से तैयारी नहीं की थी, उसका भाषण काफी अच्छा रहा। फिर अचानक उसे वायरूल्स की वायरियन नियुक्त कर दिया गया। यह किसी भी वायरस को मिलने वाले सबसे महत्वपूर्ण पदों में से एक था। ज़ायरस को यह जानकर बहुत अचम्भा हुआ। फिर उसने इस बात की योजना बनाई कि कोरोना जो भी कर रहे हैं उसे जानने के लिए उनकी जासूसी किस तरह की जाए। ज़ायरस और उसकी स्वूश टीम के बाकी सदस्य लगभग एक हफ्ते पहले डर्थ पर आए और उन्होंने देखा कि लोग किस तरह संक्रमण फैला रहे थे। कुछ समय बाद उन्होंने कोरोनाओं के साथ मीटिंग करने का निर्णय लिया। उन्होंने कोरानाओं को बताया कि उन्होंने डर्थ पर भयानक विपत्ति और दुख के मंज़र देखे हैं, और फिर थोड़ी बातचीत के बाद उन्होंने कोरोनाओं को यह खलबली रोकने के लिए राज़ी कर लिया। कोरोना और वायरूल, दोनों पक्षों को महसूस हुआ कि डर्थ पर रहने वाले बच्चे बेहद चतुर व बुद्धिमान हैं, और उन्होंने तय किया कि वे एक खत लिखेंगे कि आखिर क्यों इन बच्चों को पर्यावरण को बचाना चाहिए। अगले दिन, स्वूश टीम और ज़ायरस वापिस वायरूली आ गए जहाँ ज़ायरस को प्रमुख विनाशक बना दिया गया।

यह कहानी हमें अपने प्राकृतिक परिवेश को बचाने की ज़रूरत के बारे में बताती है। और यह आज के समय का बहुत ही महत्वपूर्ण और ज़रूरी मुद्दा है जिस पर विचार किया जाना ज़रूरी है। यह कहानी इस मुद्दे को खुलकर और बहुत मज़बूती से उठाती है। कहानी के चित्र भी बहुत प्रभावशाली और आकर्षक हैं। कहानी में हास्य की भरमार है जिससे पढ़ने का अनुभव बहुत मज़ेदार हो जाता है। मुझे किताब बहुत अच्छी लगी सिर्फ एक बात को छोड़कर कि इसका अन्त बहुत सन्तोषजनक नहीं है जिसकी वजह से एक अधूरेपन का एहसास होता है।

समीक्षा: नयनतारा वकनकर, छठवीं
मिराम्बिका फ्री प्रोग्रेस स्कूल, दिल्ली

इस शानदार किताब को ज़ाई व्हिटेकर ने लिखा है, जबकि इसके 'चमकदार' चित्र बनाए हैं नीलोफर वाडिया ने। कहानी में बताया गया है कि ज़ायरस नाम की एक युवा वायरस, जो एक वायरूली (वायरस समुदाय का सदस्य) है, किस प्रकार अपने डर और दब्बूपन पर विजय हासिल करती है। वह अपने लोगों (दूसरे वायरस) को बताती है कि उनके दोस्त, कोरोना वायरस, मनुष्यों को नुकसान पहुँचाने की दिशा में हद से आगे चले गए हैं और अब उन्हें किस तरह रुकना चाहिए। जब ज़ायरस अपनी बात कहती जाती है तो उसके भीतर की नन्ही-सी हिम्मत बड़ी होती जाती है। और यह हिम्मत ज़ायरस से कहती है कि धरती माँ को बचाने के लिए उसे बोलते ही जाना होगा।

ज़ाई व्हिटेकर ने जिस दृष्टिकोण से यह कहानी लिखी है वह भी मुझे बहुत दिलचस्प लगा। वह कह रही हैं कि अपनी-अपनी तरह से सभी वायरस अच्छे होते हैं। हम मनुष्य कोरोना वायरस के बारे में शिकायत करते हैं और उन्हें बड़ा भयानक बताते हैं। मुझे इस बात की तसल्ली है कि कोरोना वायरस यह नहीं जानते कि हम उन्हें क्या-क्या कहते हैं। इस किताब में आप देखेंगे कि कोरोना दरअसल ऐसे सख्त किस्म के शिक्षक हैं जो हमें बहुत ज़रूरी पाठ पढ़ाने आए हैं क्योंकि हम पृथ्वी को नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

कहानी में जो दूसरी बात मुझे दिलचस्प लगी वह था कोरोना वायरस का बर्ताव। उनकी भावनाएँ हमेशा चरम पर रहती थीं। या तो वे मनुष्यों से बहुत नाराज़ होते या फिर वायरूली की भाँति दयालु। वायरूली और कोरोना, इन दो वायरस समुदायों के बीच बड़ी आसानी से लड़ाई छिड़ जाती थी। उनके बीच विवाद इस बात को लेकर थे कि मनुष्यों को तबाह किया जाए या नहीं। ऐसे समय में ज़ायरस का दब्बूपन फिर लौट आता। लेकिन लड़ाई से सबक लेते हुए उसने और कोरोना वायरसों ने वही किया जो हम सब करते हैं – समझौता। समझौता करने के लिए ज़रूरी है कि हम उदारता दिखाएँ। दोनों पक्ष अपने-अपने विचार पर अड़े रहने का अड़ियलपन छोड़ते हैं ताकि एक नया विचार जन्म ले सके जिसे दोनों पक्ष स्वीकार करें।

मैं इस किताब को पाँच में से साढ़े चार स्टार दूँगी। चार स्टार तो मैं ज़ायरस द्वारा दिखाई गई हिम्मत और कहानी में की गई सुलह-समझौते की बात की वजह से दे रही हूँ। पाँचवां स्टार मैं पूरा नहीं, आधा ही दे रही हूँ क्योंकि ज़ायरस को बड़ी आसानी से जीत मिल जाती है। साहस और जोखिम भरे सभी कामों में सफलता और असफलता के बीच सन्तुलन का होना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि अगर हार नहीं होगी तो हमें पता कैसे चलेगा कि जीत क्या होती है। यह किताब 8-10 साल की उम्र के बच्चों के लिए है। इस उम्र में बच्चों की कल्पना की उड़ान बहुत ऊँची होती है।

मैं एक छोटी-सी बात और कहना चाहूँगी कि क्यों मैंने इस किताब के चित्रों को 'चमकदार' कहा है। किताब के कवर पेज पर जो चित्र है उसमें किताब की नायिका और उसके दोस्त मनुष्यों की दुनिया में दिखाई दे रहे हैं। हालाँकि वायरूली उस समय खुश नहीं थे लेकिन फिर भी उनकी आँखों में चमक दिखाई दे रही है, और इससे हमें यह एहसास होता है कि हर चीज़ में और हर स्थिति में कुछ न कुछ सकारात्मक पहलू छिपा होता है।

अनुवाद: भरत त्रिपाठी

फुर्तीली गिलहरियाँ

फोटो : दीपाली शुक्ला
अनुवाद: कविता तिवारी

लड़ाई के लिए कमर कसना

झबरैले पूँछ वाले* गिलहरियों को हम चूहों और खरगोशों के भाई-बहन कह सकते हैं। फुर्ती से ऊपर-नीचे जाने व पेड़ों पर यहाँ से वहाँ जाने में सन्तुलन बनाने के लिए वे अपनी लम्बी और घनी पूँछ का इस्तेमाल करते हैं। दूसरी गिलहरियों से 'बात' करने में भी पूँछ उनके काम आती है।

शायद तुमने गिलहरियों को झण्डे की तरह अपनी पूँछ को ऊँचा उठाते और झटकते या आजू-बाजू लहराते देखा होगा। गिलहरियाँ ऐसा तब करते हैं जब वे किसी दूसरी गिलहरी पर हमला करने वाले होते हैं।

वह तब भी अपनी पूँछ को झण्डे की तरह फहराते हैं जब उन्हें कोई परभक्षी (उनका शिकार करने वाला कोई जानवर) दिखाई देता है। इससे परभक्षी को पता चल जाता है कि गिलहरी ने उसे देख लिया है और दूसरी गिलहरियों को भी पता चल जाता है कि आसपास के इलाके में कोई खतरा है।

फील्ड डायरी के लिए

चलो, गिलहरियों की गिनती करते हैं। तुम अपने घर के बगीचे या पास के किसी पार्क में यह कर सकते हो।

चारों ओर घूमो और दस मिनट में दिखने वाली गिलहरियों को गिन लो। जितना हो सके अलग-अलग दिशाओं में टहलो और ज़्यादा से ज़्यादा पेड़ों पर ध्यान से देखो। कोशिश करना कि तुम किसी गिलहरी को दुबारा ना गिनो।

गिनती करने के बाद थोड़ी देर तक गिलहरियों को ध्यान से देखो।

- वो क्या कर रहे हैं? बैठने, दौड़ने जैसी गतिविधियों के दौरान उनकी पूँछ की स्थिति और हरकत (सीधी, आड़ी, घुमावदार, फूली हुई, झटका देती हुई या काँपती हुई) पर ध्यान दो।
- वो किस तरह की आवाज़ निकालते हैं उसके बारे में लिखो।
- गिलहरी के शरीर पर बनी फीकी धारियों को गिनने की कोशिश करो। क्या तुम उनकी पीठ के नीचे की धारियों को स्पष्ट रूप से देख सकते हो?

हमें लिखो और उन गिलहरियों के बारे में बताओ जिन्हें तुमने देखा। यह भी बताओ कि वो क्या कर रहे थे? उनके शरीर पर कितनी धारियाँ थीं?

* हिन्दी में गिलहरियों को हम स्त्रीलिंग मानते हैं, लेकिन गिलहरियाँ तो मादा और नर दोनों ही होते हैं। इसलिए हमने यहाँ इनका ज़िक्र कुछ इस तरह से किया है।

जंगल में

भारत के घने जंगल कई अलग-अलग तरह के गिलहरियों के घर हैं। हथेली में समा जाने वाले कई तरह के छोटे गिलहरियों के अलावा बहुत-से विशाल गिलहरियाँ भी होते हैं। यह विशाल गिलहरियाँ हथेली में समा जाने वाले गिलहरियों से दुगने लम्बे होते हैं। भारतीय विशाल गिलहरी, धूसर विशाल गिलहरी और भारतीय विशाल उड़न गिलहरी ऐसे ही कुछ गिलहरियाँ हैं। उड़न गिलहरी के आगे व पीछे वाले पैरों के बीच में एक झिल्ली होती है और वह इसका उपयोग एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक उड़ने के लिए करते हैं।

विशाल भारतीय गिलहरी

विशाल धूसर गिलहरी

भारतीय विशाल उड़न गिलहरी

सुपारियों और पत्तियों का खाना

आम तौर पर गिलहरियाँ सुपारी (nuts) खाने के लिए जाने जाते हैं, पर असल में वो पौधे के सभी भागों जैसे कि फल, बीज और छाल खाते हैं। वो मशरूम, कीड़े और कभी-कभी पक्षियों के अण्डे व दूसरे छोटे जानवरों को भी खाते हैं।

कुछ छोटे और विशाल गिलहरियाँ खाने का संग्रह भी करते हैं और उसे छिपाकर रखते हैं ताकि वो उसे बाद में खा सकें। उन्हें कई हफ्तों, यहाँ तक कि कई महीनों बाद भी वो जगहें याद रहती हैं जहाँ उन्होंने खाना छिपाया होता है।

प्रतियोगिता

chakmak@eklavya.in पर लिखो कि दस मिनट में तुमने कितने गिलहरियों को देखा और एक किताब जीतने का मौका पाओ। यदि तुम उनके शरीर पर धारियों की संख्या गिन पाए तो इस बारे में और हमारे प्रति उनके व्यवहार के बारे में भी लिखो।

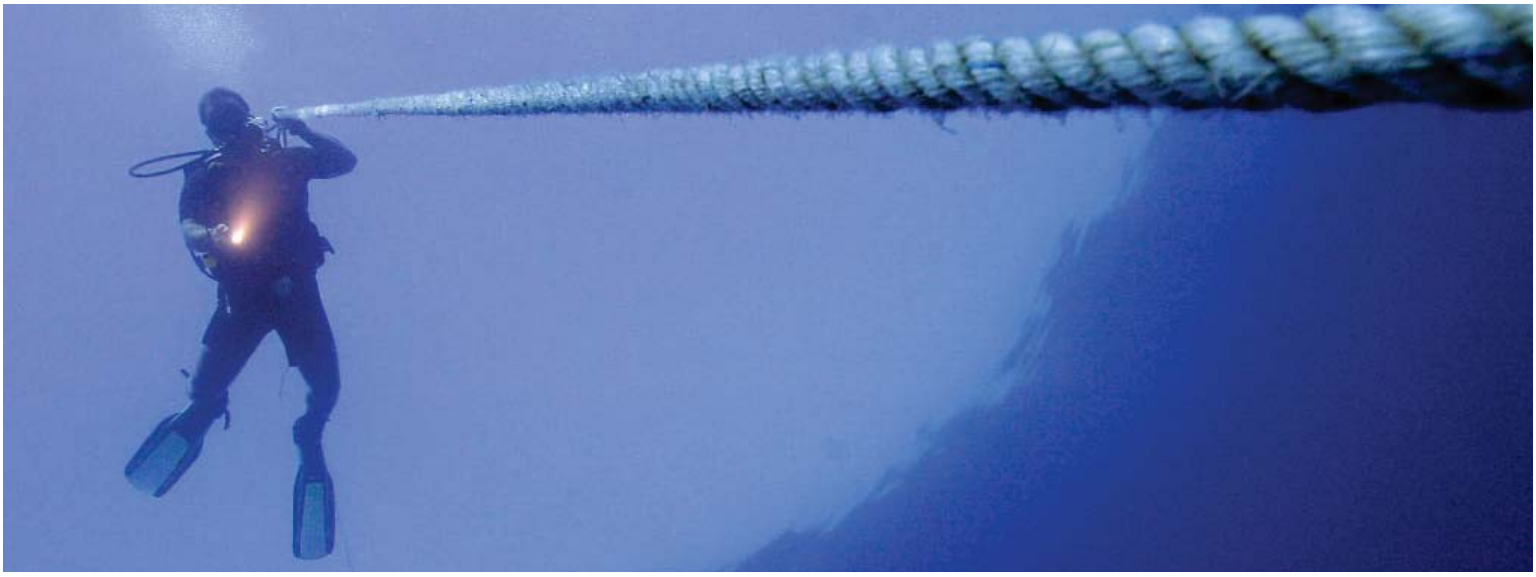

टेलीफोन केबल से भूकम्प संवेदी

अमेरिका के एक भूकम्प विज्ञानी जोंवेन ज़ान ने विचित्र अन्दाज़ में नया साल मनाया। उन्होंने नए साल के जश्न के दौरान बैंड की तेज़ ध्वनि से उत्पन्न कम्पन को ज़मीन के नीचे दबे प्रकाशीय तन्तुओं की मदद से रिकॉर्ड किया।

तुम जानते होगे कि टीवी, फोन और इंटरनेट के लिए प्रकाशीय तन्तु केबल (optical fiber cable) का उपयोग होता है। शहरों में इन महीन तारों का नेटवर्क किसी पेड़ की जड़ों की तरह फैला है। इन तारों के भीतर काँच के कई बहुत ही बारीक तन्तुओं में प्रकाश की मदद से डेटा प्रसारित किया जाता है। लेकिन एक समय पर सारे तन्तुओं का उपयोग नहीं होता। ऐसे 'निष्क्रिय तन्तुओं' का उपयोग सस्ते भूकम्प संवेदी के रूप में किया जा सकता है।

जोंवेन ज़ान की टीम ने स्थानीय अधिकारियों से सैंतीस किलोमीटर लम्बे केबल के दो स्ट्रैंड उपयोग करने की अनुमति ली। उन्होंने दोनों स्ट्रैंड के एक-एक छोर पर लेज़र लगा दिया जो अवरक्त (Infrared) प्रकाश छोड़ता था। इनमें से अधिकांश प्रकाश तो फाइबर के रास्ते आगे बढ़ गया। लेकिन कुछ हिस्सा फाइबर में खराबी के कारण परावर्तित हो गया। शोधकर्ताओं ने इस परावर्तित प्रकाश के वापिस पहुँचने के समय को भी अपने उपकरणों में दर्ज किया। ज़ान के अनुसार फाइबर में खराबी के कारण प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

कई बार मापन करके शोधकर्ताओं ने प्रतिध्वनि के पहुँचने के समय में अन्तर को देखा। इसके आधार पर वे बता पा रहे थे कि कम्पन कब प्रकाशीय तन्तु के उस खण्ड को खींचकर थोड़ा लम्बा कर देते हैं। उपकरणों की मदद से फाइबर में एक मीटर खण्ड की लम्बाई में एक अरबवें हिस्से के फैलाव का पता लगाया सकता है। भूकम्प के दौरान ऐसा फैलाव होता है। तो आपके पास हज़ारों संवेदी उपकरण मौजूद हैं।

पूर्व में इस तकनीक का उपयोग सेना द्वारा पनडुब्बियों को ताड़ने में किया जाता था। अब इनका उपयोग हर उस काम में किया जा सकता जहाँ कम्पन शामिल हैं, जैसे भूकम्प की निगरानी में। यहीं नहीं ट्रैफिक पैटर्न को रिकॉर्ड करने, ज़मीन के नीचे दबी पाइप लाइन में रिसाव का पता लगाने और अनधिकृत प्रवेश का पता लगाने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। जिन शहरों में पहले से हज़ारों किलोमीटर का फाइबर नेटवर्क मौजूद है वहाँ तो इस प्रणाली का उपयोग किया ही जा सकता है।

स्रोत फीचर्स से साभार

एक गिलहरी की खोज में

विनता विश्वनाथन
चित्र: राही डे रॉय

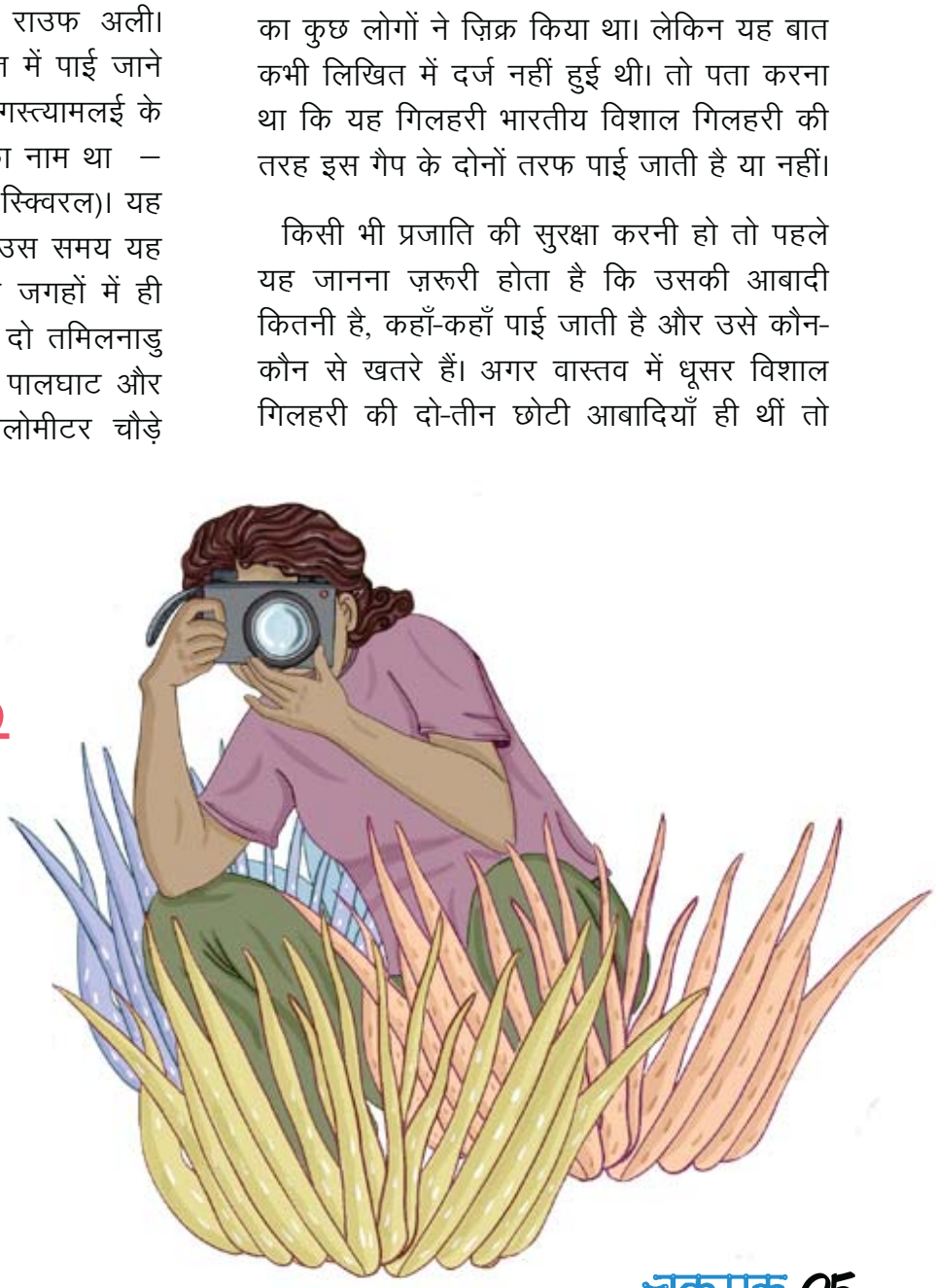

अकेले घूमने का शौक मुझे बचपन से था और बर्डवॉचिंग का भी। तो मौका मिलने पर मैं ईकोलॉजी की स्नातक पढ़ाई के लिए पांडिचेरी यूनिवर्सिटी चल पड़ी। वहाँ वन्यजीव पर शोध करने का निर्णय लेना मेरे लिए आसान था। मेरे कुछ सीनियर्स ने भी मुझे काफी प्रोत्साहित किया और इस तरह मैं जंगलों में समय बिताने लगी।

डिग्री हासिल करने के लिए हमें एक प्रोजेक्ट करना था। मेरे पास कोई अनुभव नहीं था। इसलिए यह तय करना मुश्किल हो रहा था कि किस विषय पर शोध किया जाए। मेरे एक प्रोफेसर थे – राउफ अली। उन्होंने सुझाव दिया कि मैं दक्षिण भारत में पाई जाने वाली एक विशाल गिलहरी की खोज अगस्त्यामलई के पहाड़ों में करूँ। इस विशाल गिलहरी का नाम था – धूसर विशाल गिलहरी (ग्रिज़ल्ड जायंट स्क्विरल)। यह भारतीय विशाल गिलहरी से अलग है। उस समय यह गिलहरी दक्षिणी पश्चिमी घाट की तीन जगहों में ही पाई गई थी। एक जगह केरला में और दो तमिलनाडु में थीं। ये सभी जगहें पश्चिमी घाट के पालघाट और शैनकोटई गैप के बीच थीं। तीस किलोमीटर चौड़े पालघाट गैप के उत्तर में इसे कभी देखा नहीं गया था। और लगभग साढ़े सात किलोमीटर चौड़े शैनकोटई गैप के दक्षिण के पहाड़ों में इसे देखने का कुछ लोगों ने ज़िक्र किया था। लेकिन यह बात कभी लिखित में दर्ज नहीं हुई थी। तो पता करना था कि यह गिलहरी भारतीय विशाल गिलहरी की तरह इस गैप के दोनों तरफ पाई जाती है या नहीं।

किसी भी प्रजाति की सुरक्षा करनी हो तो पहले यह जानना ज़रूरी होता है कि उसकी आबादी कितनी है, कहाँ-कहाँ पाई जाती है और उसे कौन-कौन से खतरे हैं। अगर वास्तव में धूसर विशाल गिलहरी की दो-तीन छोटी आबादियाँ ही थीं तो

उनकी सुरक्षा ज़रूरी थी। लेकिन अगर इसकी आबादी उतनी कम नहीं थी जितना कि हम सोच रहे थे तो शायद हमें उसकी सुरक्षा के बारे में इतनी चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं थी।

लेकिन किसी भी नए इलाके में गिलहरी की खोज में निकलने से पहले मेरे लिए यह ज़रूरी था कि मैं इसके बारे में कुछ जान लूँ – इस गिलहरी को तो मैंने कभी देखा तक नहीं था।

तो चार सौ रुपए लिए और पीठ पर अपना बैकपैक टाँगे राउफ (मेरे प्रोफेसर) की सलाह पर मैं पळणी पहाड़ों के लिए निकल पड़ी। रात भर बस के सफर के बाद अगले दिन मैं मदुरई पहुँची। फिर एक और बस पर सवार होकर मैं शाम तक ओट्टनचत्रम पहुँच गई। राउफ ने कहा था कि मैं रात को उस गाँव के स्कूल में रुक सकती हूँ। तो कुछ लोगों से बात करके मैंने अपना स्लीपिंग बैग वहीं स्कूल में बिछा लिया। और अगले दिन बच्चों के आने से पहले मैं गिलहरी के इलाके के लिए रवाना हो गई।

उस जगह का नाम था सिरुवैट्टकाडुकोम्बेई या कोम्बेई। वहाँ तक पहुँचने का एकमात्र रास्ता था – जंगल की एक पगडण्डी। क्या सुन्दर नज़ारे देखे मैंने कोम्बेई के रास्ते पर। कोम्बेई बहुत दूर भी नहीं था। मेरे लिए तो दो घण्टों का पैदल रास्ता था। पहली बार मुझे ऊँचाई के साथ बदलते पेड़-पौधे देखने को मिल रहे थे। रास्ते में एक सुन्दर झरने के किनारे मैंने दर्जनों तितलियाँ इकट्ठी देखीं। वे कीचड़ में बैठी थीं और तरह-तरह की किस्म की थीं। पहली बार मैं जंगल में अकेले चल रही थी। मुझे बहुत मज़ा आ रहा था।

कोम्बेई पहुँचकर मुझे पहाड़ों से पूरी तरह घिरी हुई एक वादी मिली। अनिल नाम के एक व्यक्ति ने मेरा स्वागत किया और बाँस से बनी एक झोंपड़ी में मुझे रुकवाया – वह बाँस के डण्डों (स्टिल्ट्स) पर स्थिर थी। साम्बार-चावल खिलाकर वे मुझे गिलहरी दिखाने ले चले। मैं काफी उत्सुक थी। पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही हमें गिलहरी के सुराग मिले – ऊपर पेड़ की डाली पर लगभग एक मीटर चौड़ा घोंसला। कुछ ही मिनटों बाद हमने एक छोटी बिल्ली बराबर गिलहरी को एक पेड़ से दूसरे में छलाँग मारते हुए देखा। जंगल का रास्ता मुझे समझाकर अनिल वापिस चल पड़े।

मैं उस गिलहरी के पीछे कुछ घण्टों तक लगी रही। कोम्बेई गाँव के आसपास रहने वाली इस गिलहरी को लोगों की आदत थी तो वो मुझसे डरकर भाग भी नहीं रही थी। उसके ज़रिए मुझे और भी कई गिलहरियाँ देखने को मिलीं। दो दिन बाद मैं

पांडिचेरी वापिस लौटी। गिलहरियों को तो मैंने देख लिया था, उनके व्यवहार के बारे में भी मुझे कुछ बातें समझ आ गई थीं – जैसे कि वे कैसी आवाज़ें निकालते हैं, किस तरह के पेड़ों पर मिल सकते हैं, उनके घोंसले कैसे दिखते हैं इत्यादि।

कोम्बेई जाने के बाद मैं गिलहरी के एक अभ्यारण्य में भी गई। यह अभ्यारण्य उन दिनों के प्रख्यात डाकू वीरप्पन के इलाके में था। और फिर उसके बारे में जितना लिखा गया था वो भी मैंने पढ़ा। फिर जाकर मेरी हिम्मत बनी कि अगस्त्यामलई के पहाड़ों में मैं उसकी खोज में निकलूँ। दो महीनों के सर्वे के बाद गिलहरी मुझे वहाँ नहीं मिली। मेरे रिपोर्ट में मेरी मेहनत ज़रूर दर्ज थी लेकिन एक वाक्य के नतीजे के बल पर मुझे शायद ही डिग्री मिलती। और मैं पांडिचेरी वापिस आकर अपने प्रोजेक्ट के लिए दूसरा विषय तलाशने लगी।

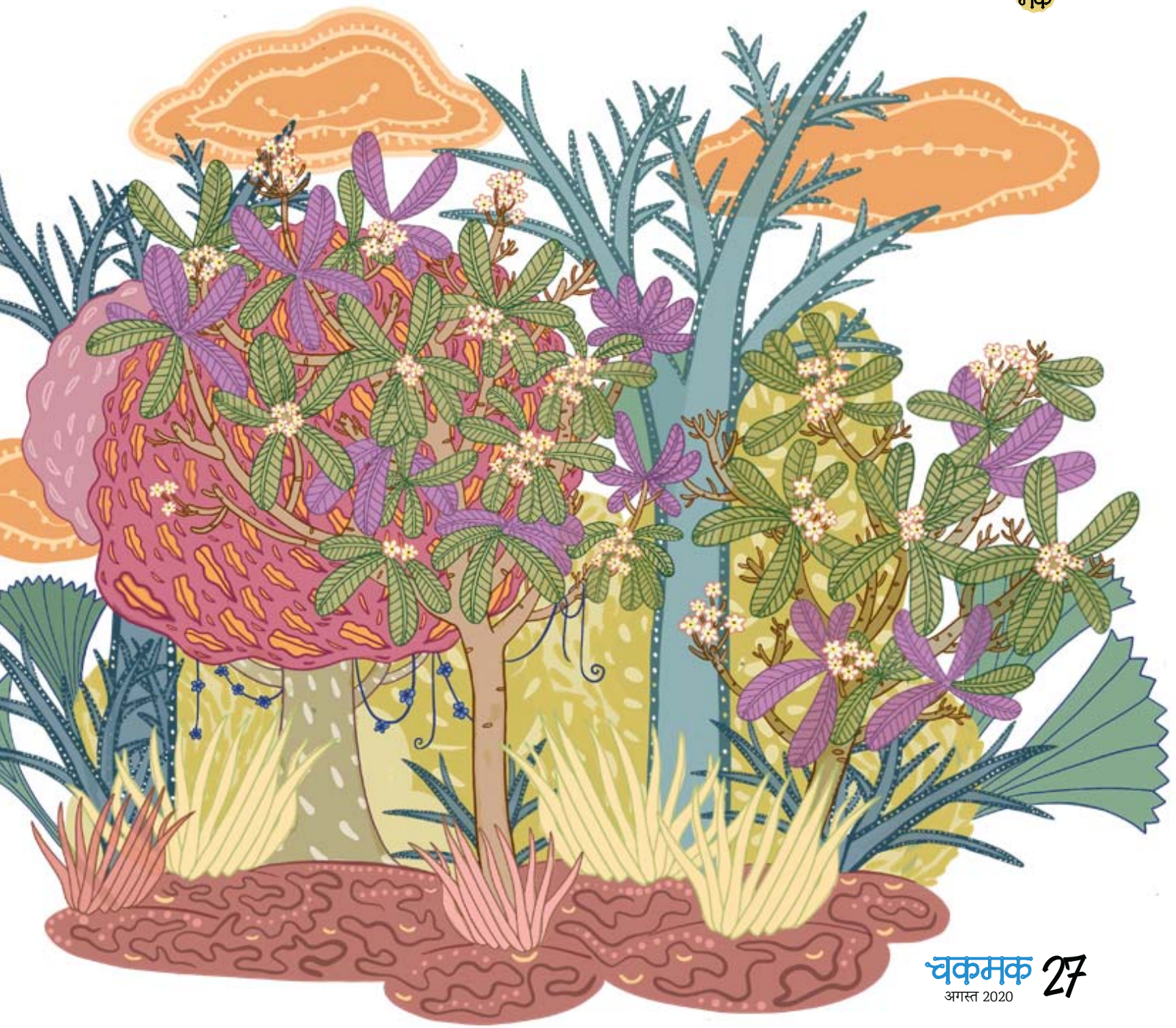

भाग – 4

बोरेवाला

मूल तेलुगू कहानी: जयश्री कलाथिल
चित्रांकन: राखी पेशवानी
अनुवाद: शशि सबलोक
प्रकाशक: एकलव्य

यह कहानी अन्वेषी द्वारा विकसित की गई डिफरेंट टेल्स का हिस्सा है। डिफरेंट टेल्स क्षेत्रीय भाषा की कहानियाँ ढूँढ़-ढूँढ़कर निकालता है, ऐसी कहानियाँ जो ज़िन्दगी की बातें करती हैं — ऐसे समुदायों के बच्चों की कहानियाँ जिनके बारे में बच्चों की किताबों में बहुत कम पढ़ने को मिलता है।

अब तक तुमने पढ़ा:

अनु की गर्मी की छुट्टियाँ शुरू हो गई हैं। चार महीने पहले ही उसकी सजिचेची की मौत हो जाती है। तब से अम्मा उदास रहने लगती हैं और अच्चन भी घर में कम ही दिखाई देते हैं। पहले तो अनु फटी-पुरानी बोरियों के थेगड़ों को सिलकर पहनने वाले चाकप्रान्दन से डरती है। उसे खाने के लिए भी कुछ नहीं देती। पर दो-तीन दिन बाद जब वो दुबारा आता है तो वह हिम्मत करके उसे खाना-पानी देती है। फिर एक दिन अनु की चाकप्रान्दन से बातचीत होती है। उसके बाद से वह लगभग रोज़ ही उसके घर आने लगता है। अनु को चाकप्रान्दन से बातें करना अच्छा लगने लगता है, अच्चन की इस हिदायत के बावजूद भी कि वह चाकप्रान्दन से दूर रहे।

अब आगे...

आम तौर पर चाकप्रान्दन ज़्यादा बातें नहीं करता था। मैं बस बैठ जाती और उसे खाना खाते देखती रहती। और बीच-बीच में वह कुछ कह देता या पूछ लेता। चाकप्रान्दन, वैसा ही था जैसे आम तौर पर बड़े लोग होते हैं – अगर आप कुछ पूछो जिसका जवाब देने का उसका मन नहीं होता तो कह देता, "तुम नहीं समझोगी। छोटी हो।" इसके आगे बात बढ़ाने का कोई मतलब ही नहीं रह जाता।

और जब उसका बात करने का बहुत मन होता तो वो अपने बेटे सोमन के बारे में बताता – कैसे स्कूल के पहले दिन वो पूरे रास्ते रोता गया, कैसे गणित में पूरे नम्बर लाने वाला वह लड़का एक शब्द के भी हिज्जे सही नहीं लिख पाता था। और मैं उसे सजिचेची के बारे में कुछ बताती। कि मुझे उनकी कितनी याद आती है। कि अपनी गन्दी लिखाई और लोगों के फुसफुसाने के कारण मुझे स्कूल जाना कितना बुरा लगता है। फिर मैं चाकप्रान्दन के साथ होने वाली बातों को लिखने लगी। बस चाकप्रान्दन की बजाय उसका नाम नारायणन लिखती हूँ।

उसने अपनी जीप के बारे में बताया। उसके पास पूरे ज़िले में जीप को टैक्सी की तरह चलाने का लाइसेंस भी था। कलशेरी के घुमावदार रास्तों में तेज़ गाड़ी चलाने के बारे में बताते हुए उसकी आँखें चमक उठतीं। और फिर एक दिन उसका एक्सीडेंट हो गया।

"कैसे?" मैंने पूछा।

चाकप्रान्दन बहुत दुखी हो गया था। वो मुश्किल से साँस ले पा रहा था। वो कुछ बोल रहा था जिसे मैं बिलकुल नहीं समझ पा रही थी।

"आवाज़ें," "उफ्फ वो आवाज़ें..."

मैंने उससे कहना चाहा कि सब ठीक है...और उसे पानी दिया। फिर हम दोनों कुछ देर चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देर बाद वो उठा और कुछ भी कहे बगैर चल दिया।

एक्सीडेंट की बात ने उसे परेशान कर दिया था। इसने मुझे भी परेशान कर दिया था। और अब मैं अच्चन से इसके बारे में पूछना चाहती थी। पर अगर मैं उनसे पूछती तो वो बहुत गुस्सा होते। अगली बार जब चाकप्रान्दन आया तो हमने इसका कोई ज़िक्र नहीं किया। और वो पहले की तरह ही बैठा रहा।

फिर एक दिन वो नहीं आया। मैं इन्तज़ार करती रही, करती रही। पर वो नहीं आया। अगले दिन भी नहीं आया और उसके अगले दिन भी नहीं। अगली सुबह मैं पोस्ट ऑफिस के बरामदे पर उसे ढूँढ़ने गई जहाँ वो सोता था। पर वो वहाँ भी नहीं था।

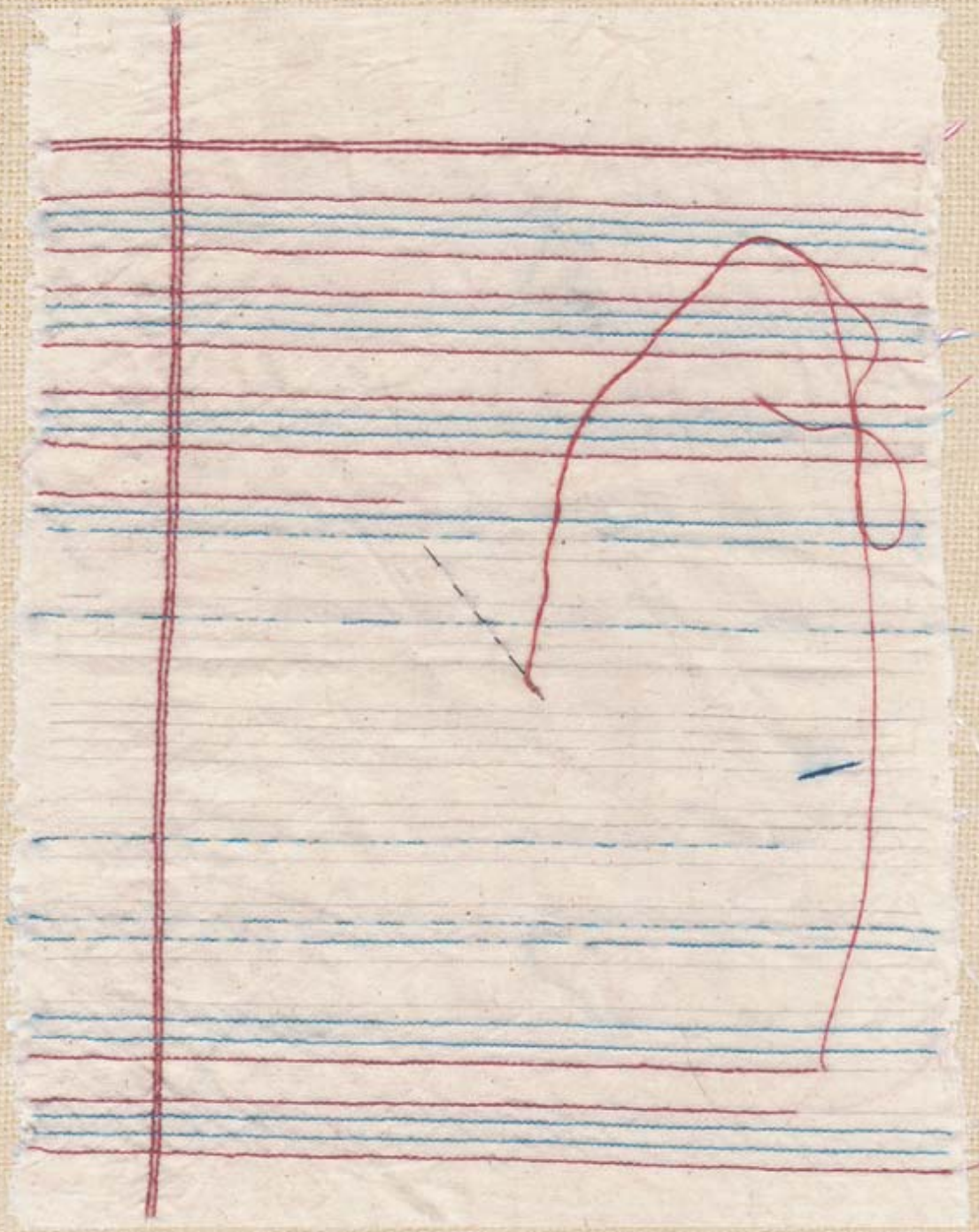

रशीदा अपने रिश्तेदार के घर से वापस आ गई थी। मैं उसके घर गई। फिर हम दोनों पोस्ट ऑफिस आए। अम्मिनिअम्मा मुख्य पोस्ट ऑफिस भिजवाने के लिए सारी डाक जमा कर रही थीं। कभी-कभी वो डाक को सील करने वाली लाख के बचे-खुचे टुकड़े हमें दे देती थीं। हमने खिड़की से यूँ झाँका जैसे हम लाख के टुकड़े देखने आए हैं।

उन्होंने हम से वही घिसा-पिटा सवाल पूछा, "छुट्टियाँ मज़े-से कट रही हैं? पढ़ाई-वढ़ाई कुछ याद

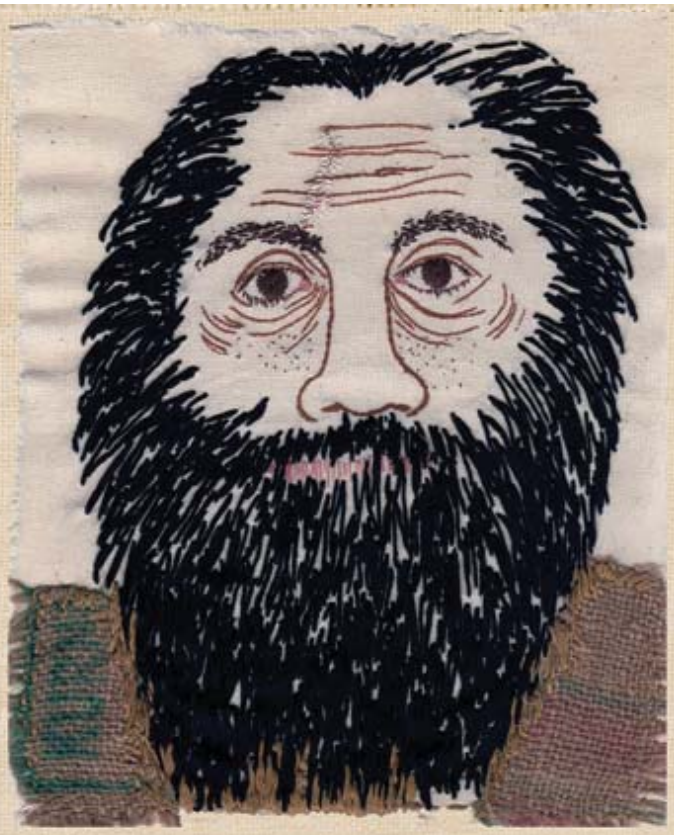

है कि सब भूल गए...?" मैंने पूछा, "क्या आपने पिछले एक-दो दिन में चाकप्रान्दन को देखा है?"

उन्होंने चिट्ठियों पर से नज़र उठाते हुए कहा, "चाकप्रान्दन में अचानक बड़ी दिलचस्पी जाग गई है तुम्हारी।" अपने चश्मे के ऊपर से आँख उठाकर उन्होंने इस तरह देखा कि लगा वहाँ से फूट लेने में ही समझदारी है।

"अरे, नहीं नहीं... कुछ खास नहीं।" मैं तपाक से बोल पड़ी। "वो तो रोज़ घर पर खाने के लिए आता था। इधर कुछ दिनों से नहीं आया तो पूछ लिया।"

अम्मिनिअम्मा उठीं और कोने वाली तंग-सी शेल्फ पर रखे एक छोटे-से डिब्बे में कुछ ढूँढ़ने लगीं। "उसका मन किया होगा थोड़ी घुमक्कड़ी करने का। सो चला गया होगा। जब-जब उसका मन अच्छा नहीं होता वो चला जाता है।"

उन्होंने हम दोनों को लाख का एक-एक टुकड़ा दिया और कहा, "अब भाग जाओ। और हाँ, चाकप्रान्दन की फिक्र करना छोड़ दो। यह तुम जैसे छोटे बच्चों की चिन्ता का विषय नहीं।"

अब किसी और से पूछने की कोई ज़रूरत नहीं थी। तो हमने सोचा अब इन्तज़ार ही करते हैं और देखते हैं वो कब आता है।

शाम को मैं अपनी किताब के साथ फर्श पर लेटी थी। मेरी कहानी में डेज़ी अभी भी वहीं अटकी थी। रशीदा का वॉटर वर्ल्ड वाला किस्सा भी मुझमें वो जोश नहीं भर पाया कि डेज़ी के लिए कोई ज़बरदस्त कारनामा लिख पाती। मुझे लगा नहीं कि अगले दो-चार दिन में मैं ऐसा कुछ कमाल कर पाऊँगी कि अच्चन को शान से दिखा पाऊँ। इसलिए जब अच्चन कमरे में आए तो मुझे खुद को लेकर बड़ा बुरा लग रहा था। अभी तो सात भी नहीं बजे थे। आज अच्चन इतनी जल्दी कैसे आ गए? पर वो पिए हुए थे। और उनका मूड काफी खराब लग रहा था।

थोड़ी देर बाद वो मेरे पास आकर बैठ गए और एक सिगरेट जलाई। उनका ध्यान मेरी कॉपी की ओर गया।

"कुछ लिखा इन दिनों?" उन्होंने पूछा।

मैंने फटाफट अपनी कॉपी ले ली। मैं नहीं चाहती थी कि वो चाकप्रान्दन के बारे में मेरा लिखा पढ़ लें। मैंने कहा, "मैं डेज़ी को लेकर अटकी हुई हूँ। उसके पास करने को कुछ नहीं है।" अच्चन ने कहा, "वो ठीक है। बड़े-बड़े लेखक भी इस अटकाव में फँसते हैं।"

तभी मुझे बाहर शोर सुनाई दिया। "चाकप्रान्दन" मैं चिल्लाई और कूद पड़ी। अच्चन ने मुझे पकड़ लिया। मैंने उन्हें बताया कि कैसे चाकप्रान्दन कुछ दिनों से नहीं आया था।

"अनु, इतनी खुश क्यों हो रही हो?" अच्चन ने सख्त आवाज़ में कहा।

"मैंने कहा था ना कि उससे बचकर रहना। वो ठीक नहीं है। बीमार है शायद। माधवन ने दो दिन पहले उसे चेलेम्ब्रा में देखा था। वो चीख-चिल्ला रहा था। वो जैसा शान्त और चुपचाप दिखता है वैसा नहीं था।"

"पर, हो सकता है कि वो भूखा हो। उसने शायद कई दिन से खाना न खाया हो।" मैंने उनकी बात को काटते हुए कहा।

अच्चन का पारा चढ़ने ही वाला था, "तुम्हें इसकी फिक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं। समझीं? तुम यहाँ बैठो, मैं देखता हूँ उसे क्या चाहिए।"

वो रसोई में गए और मैंने पीछे वाला दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनी। थोड़ी देर तक कुछ सुनाई नहीं दिया। फिर अच्चन की तेज़ आवाज़ आई। पर वो बोल क्या रहे थे यह नहीं पता चल रहा था। फिर वो अन्दर आए और बोले, "अभी तो वो चला गया है। फिर आए तो दरवाज़ा मत खोलना, कम से कम कुछ दिनों तक तो नहीं।"

रात में बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं सोचती रही कि चाकप्रान्दन को कौन खाना देगा। लेटे-लेटे एक घण्टा हो गया पर नींद नहीं आई तो मैं अम्मा के कमरे में चली गई। वो गहरी नींद में थीं। उन्होंने आज अपनी दवाई ली होगी। मैंने एक बाँह उनके ऊपर रखी और उनसे सटकर लेट गई।

न जाने कब नींद आ गई। आँख खुली तो चारों ओर अँधेरा था। मैं लेटी रही और कल के बारे में सोचती रही और यह कि चाकप्रान्दन को कैसा लग रहा होगा। सोचते-सोचते जाने कब फिर नींद लग गई।

जारी...

भूल भुलैया

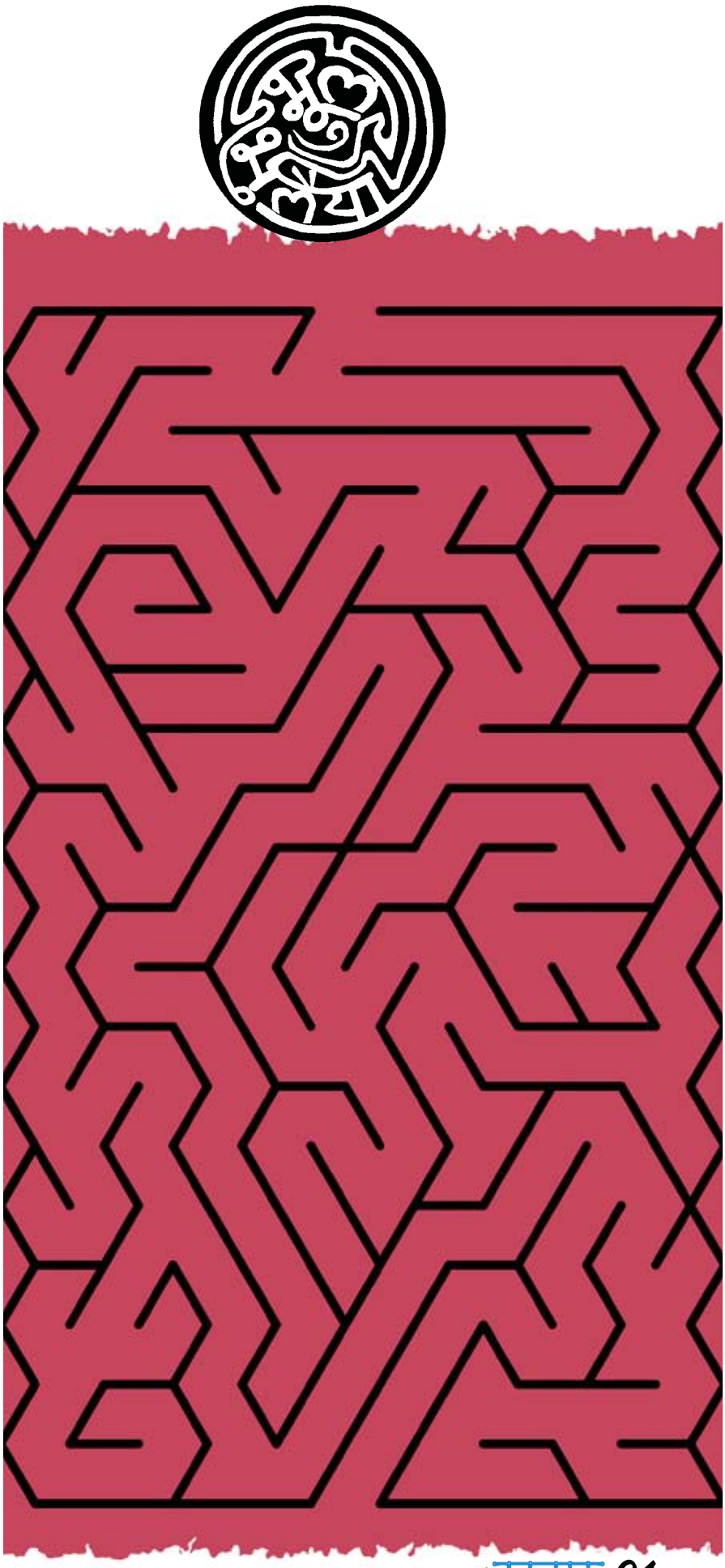

मेरा पन्ना

चार दिन का बछड़ा

निवेदिता झा
सातवीं, सेंट मेरी पब्लिक स्कूल
जन्दाहा, वैशाली, बिहार

5 फरवरी, बुधवार की शाम को अचानक हमारी गौशाला में हलचल हुई। हमने जाकर देखा तो हमारी गाय चार दिन के बछड़े को हमेशा के लिए छोड़कर ईश्वर के पास चली गई थी। हम लोगों के पास सबसे बड़ी समस्या चार दिन के बछड़े को पालने की थी। उसे दूध किस तरह पिलाया जाए सब यही सोच रहे थे। तभी मेरे पापा ने उपाय किया कि बच्चों को पिलाने वाली दूध की बोतल में दूध भरकर उसके मुँह में दिया। बछड़ा दूध पीने लगा। अब वह बछड़ा घास-भूसा खाने लगा है। और हमारे घर के एक सदस्य की तरह ही हो गया है।

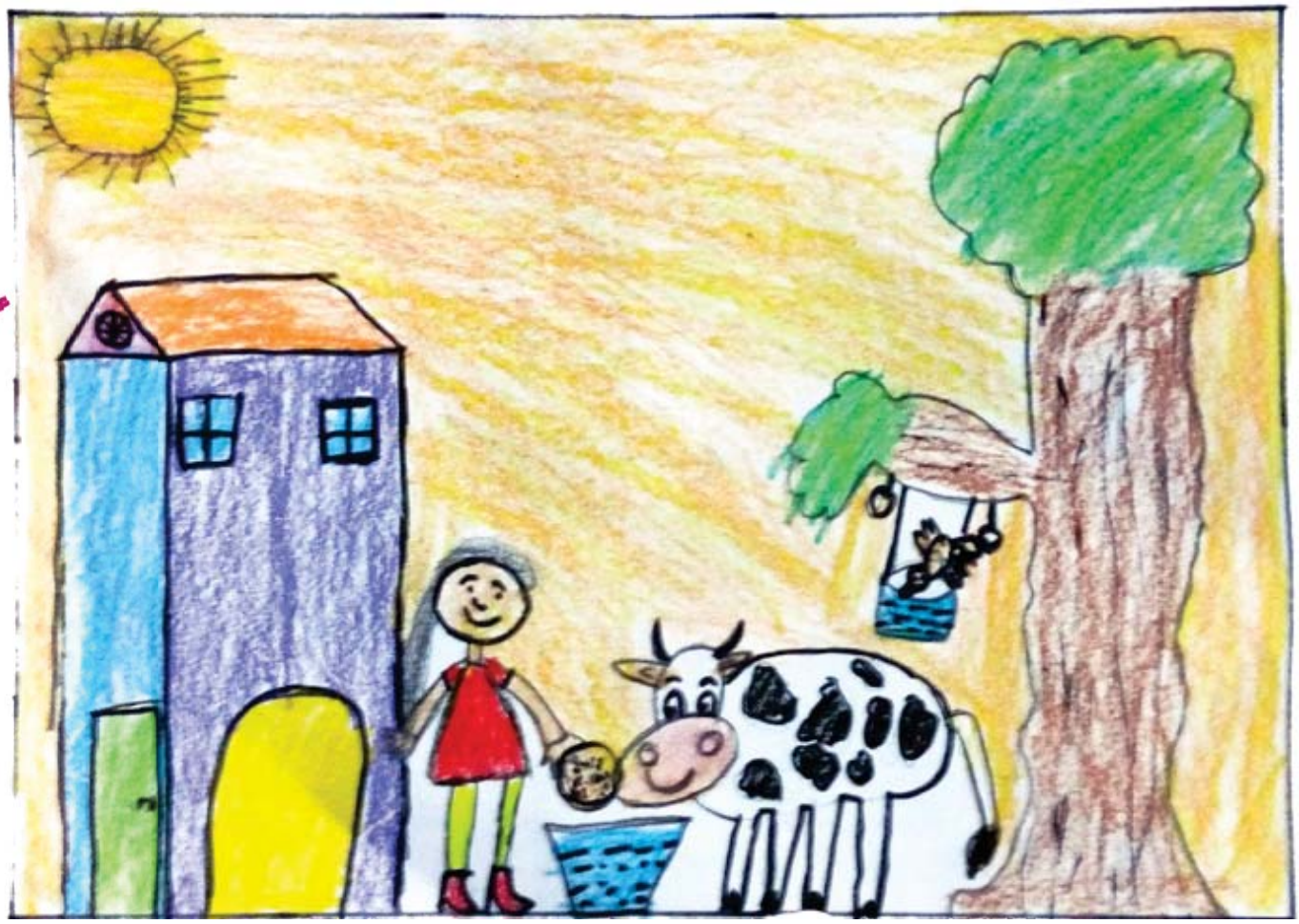

चित्र: अनविका गुप्ता, तीसरी, कृष्ण किड्स स्कूल, रायपुर, छत्तीसगढ़

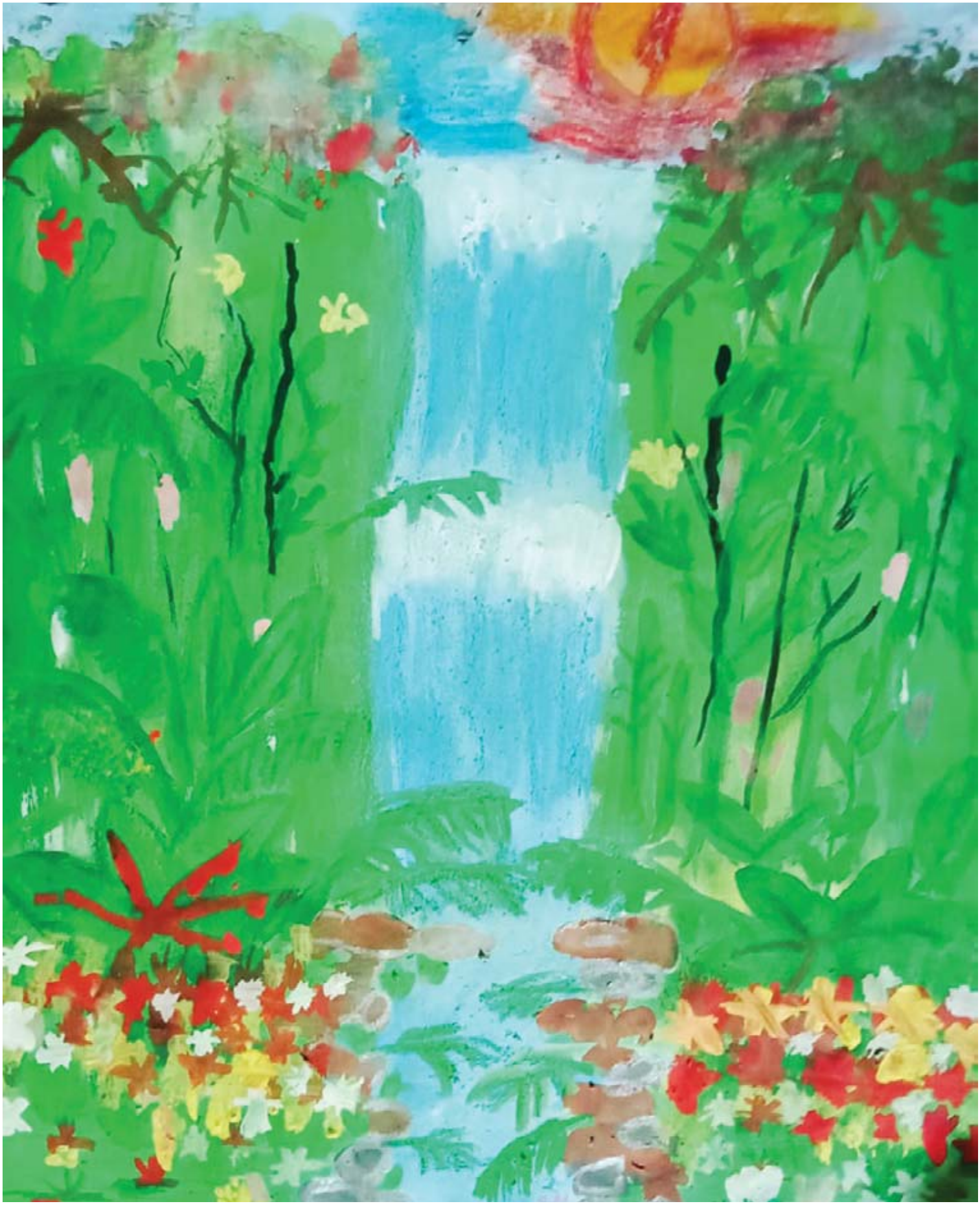

चित्र: दीपिका, नौवीं, उमंग पाठशाला, गन्नौर, सोनीपत, हरयाणा

मेरा पन्ना

एक्सीडेंट

सिल्वीया बामनिया, आठवीं, उत्कृष्ट विद्यालय, देवास, मध्य प्रदेश

शाम हो चुकी थी। दो लड़कियाँ स्कूटी पर जा रही थीं। वह फोन पर बात कर रही थीं। आपको तो पता ही होगा कि गाड़ी चलाते वक्त फोन पर बात नहीं करनी चाहिए। बीच में सूअरों की टोली आ गई और स्कूटी उलटी गिर गई। दोनों के सर पर चोट आई। एक की तो सर फटने के कारण मौके पर ही मौत हो गई और एक का हॉस्पिटल में महीनों तक इलाज चला। वह बच गई।

चित्र: अमानत, तीसरी, द हेरिटेज स्कूल, वसन्त कुंज, दिल्ली

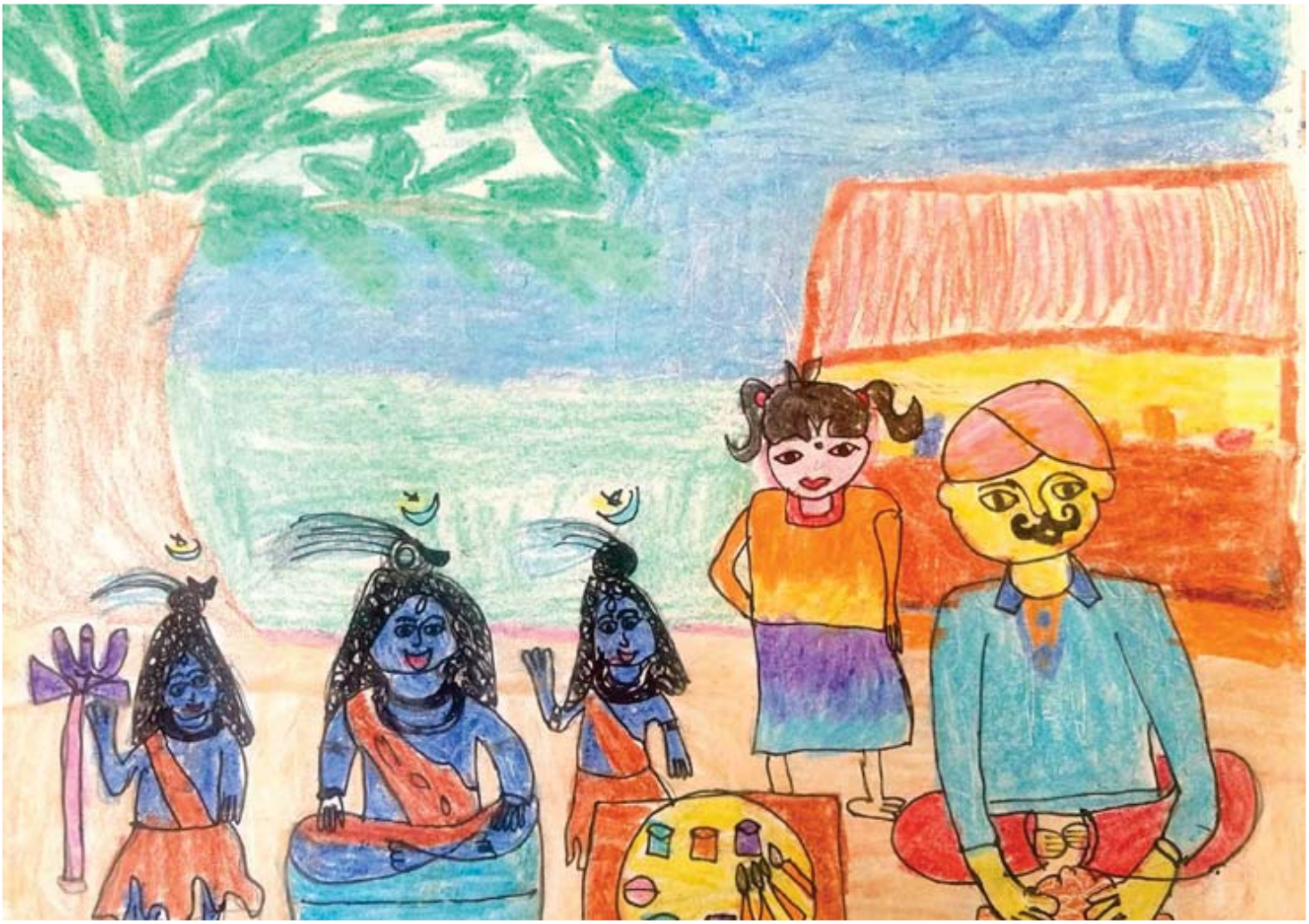

अब कैसे रंगा जाए

चित्र व लेख:
जिज्ञासा प्रजापति
पाँचवीं
प्राथमिक विद्यालय धुसाह
प्रथम, बलरामपुर
उत्तर प्रदेश

मेरे नानाजी मिट्टी के खिलौने और बरतन बनाते हैं। कजरी तीज आने वाली थी। मेले में बेचने के लिए नानाजी बहुत सारे खिलौने और मूर्तियाँ बना रहे थे। मेरे नानाजी ये सब चीज़ें साँचे से बनाते हैं। वह चाक पर नहीं बनाते। नानाजी ने गीली मिट्टी करके साँचे से खिलौने बनाए। इसमें शंकरजी की मूर्तियाँ ज़्यादा थीं क्योंकि कजरी मेले में वो जल्दी बिक जाती हैं। गीले खिलौने सुखाकर पकाने के लिए एक साथ रखे गए और अलाव जलाकर छह घण्टों तक इनको पकाया। अब इन्हें रंगने की बारी थी। हम सब रंगने में मदद करते थे। शंकरजी की कई मूर्तियाँ रंगनी बाकी थीं। उन्होंने पीले रंग से धोती रंग दी। नीले रंग से शरीर व चोटी रंगनी थी। नानाजी एक-दो मूर्ति ही रंग पाए थे कि घर के बाहर खेल रहे बच्चों की गेंद सीधे रंग के डिब्बे से टकराई और सारा रंग बिखर गया। नानाजी बहुत उदास हो गए। कल ही मेला है। अब क्या होगा ऐसा सोचते रहे। मैं स्कूल से लौटकर घर पहुँची तो सब बात जानकर मैंने नानाजी से कहा कि वो मेरे फाउंटेन पैन की नीली स्याही ले लें और मूर्ति रंगकर देख लें। फिर हम सबने मिलकर मूर्तियाँ रंगी। वो बहुत ही सुन्दर लग रही थीं।

चित्र: सतीश गुप्ता, पहली, द हेरिटेज स्कूल, गुरुग्राम, हरयाणा

शर्ट की दास्तान और सकते में जान

आस्तिक श्रीवास्तव
आठवीं, सेंट फ्रांसिस स्कूल गोमती नगर,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

एक बार मैं अपने परिवार के साथ गोवा गया था। वहाँ पर हम एक होटल में ठहरे जो समुद्र के किनारे ही था। हम सब समुद्र के किनारे घूमने के लिए निकल पड़े। वहाँ पहुँचकर हम टहल ही रहे थे कि मैंने गौर किया कि लोग मुझे घूर-घूरकर देख रहे हैं और कुछ हँस भी रहे हैं। मैं सकपकाकर सोचने लगा कि ज़रूर कुछ गड़बड़ है। मेरी समझ में कुछ नहीं आया। थोड़ी देर बाद मेरा ध्यान अपनी टी-शर्ट पर गया जो मैंने वहीं बीच से खरीदी थी। उस पर लिखा था – 'डैडीज़ प्रिंसेज़'।

मेरा पन्ना

मौसम बना दें

ज़रा बादल से कुछ बूँदें गिरा दें
चलती हवाओं की सनसनाहट सुना दें
जान आफत में है फँसी
नहीं दिखती किसी चेहरे पर खुशी
साथ में लेकर समुद्र की लहरें सुना दें
चहकती चिड़ियों की आवाज़ सुना दें
कल-कल करके झरने बरसें
पेड़-पौधे, जानवर भी न तरसें
कुछ इस तरह का मौसम बना दें

सुल्तान कुमार
छठवीं, अपना घर
कानपुर, उत्तर प्रदेश

चित्र: आस्था, छठवीं, मंगलम पब्लिक स्कूल, महादेव गाँव, सुन्दरनगर, मण्डी, हिमाचल प्रदेश

माथापच्ची

1. क्या तुम 5 को चार बार इस्तेमाल कर 100 ला सकते हो?

2. एक मेज़ पर 7 मोमबत्तियाँ जल रही थीं। तभी अचानक से खिड़की से हवा का झोंका आया और 3 मोमबत्तियाँ बुझ गईं। तो बताओ बाद में कितनी मोमबत्तियाँ बचेंगी?

3. इनमें से कौन-सा टुकड़ा कपड़े का कटा हुआ हिस्सा है

4. क्या तुम बता सकते हो कि यह किस चीज़ की नज़दीक से खींची गई तस्वीर है?

5. नीचे दिए गए वाक्यों में कुछ जगहों के नाम छिपे हैं। ज़रा ढूँढ़ो तो...

- राशिद की बकरी वाकई में बहुत प्यारी है।
- तुम अगर तलाश करोगे तो कोई ना कोई सुराग ज़रूर मिलेगा।
- आग रात में लगी थी।
- मिंकु का सिर साबुन से धोना।
- खुदाई में पत्थर के नुकीले हथियार भी मिले।

6. निया और अर्श ने सोचा कि वो दोनों अगले एक घण्टे में अपनी गली में आने-जाने वाले लोगों को गिनेंगे। फर्क बस इतना है कि निया अपने घर के फाटक के पास खड़े होकर गिनेगी और अर्श गली में आगे-पीछे घूमते हुए। किसकी गिनती में ज़्यादा लोग आएँगे?

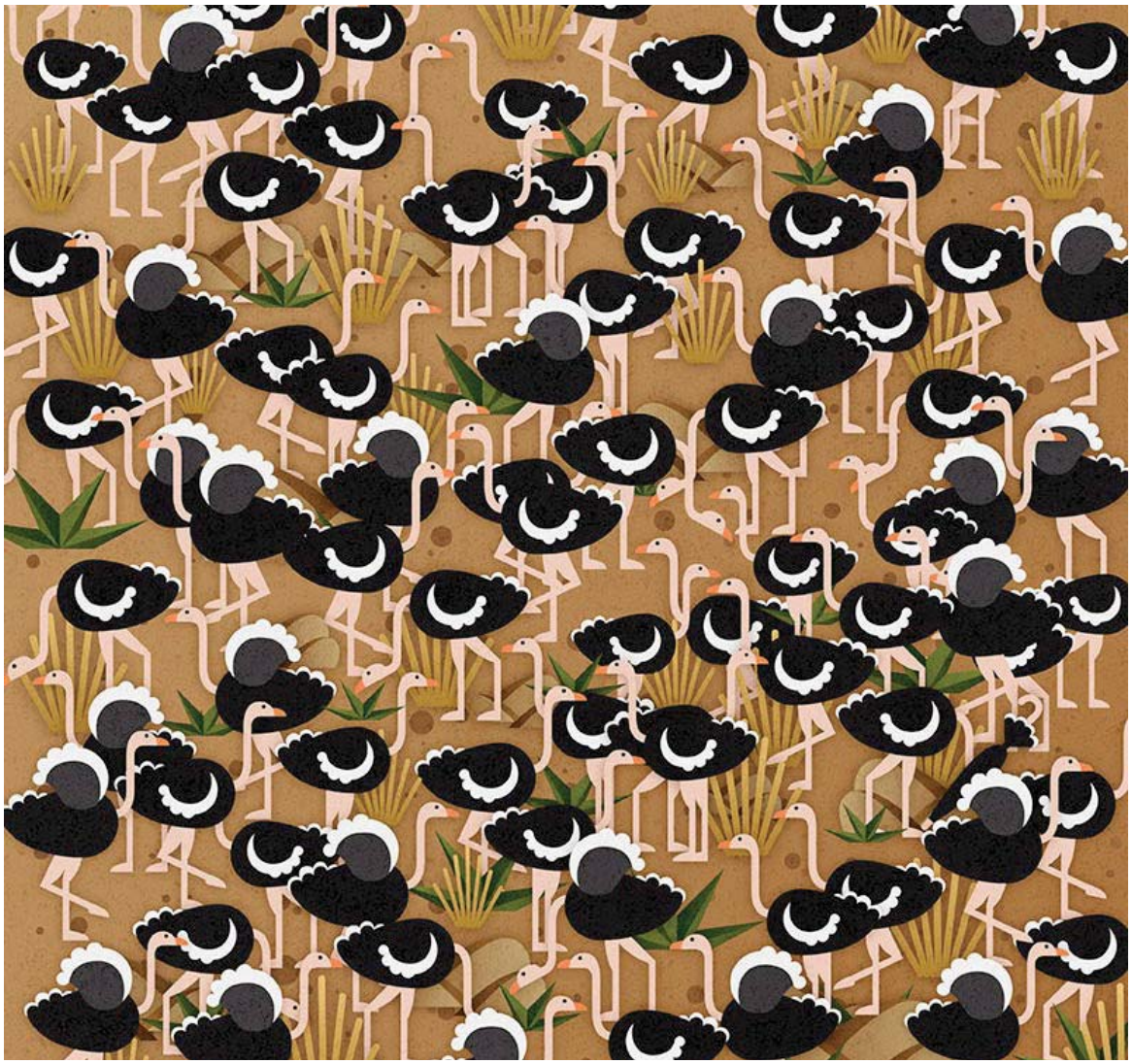

7.

क्या तुम्हें इन ऑस्ट्रिच के बीच में एक छतरी नज़र आ रही है?

फटाफट बताओ

क्या है जो वर्ष में एक बार और रविवार में दो बार आता है?

(व)

ऐसी कौन-सी आवाज़ है जिसे बाकी सभी लोग सुन सकते हैं, सिर्फ तुम नहीं?

(अपने खर्राटे की आवाज़)

वह क्या है जिसे चाहे जितनी मर्ज़ी पीसो, वह साबुत ही रहता है?

([illegible])

छोटे-बड़े सभी को भाए, बूझ सके तो बूझ
गोल-मटोल रंग है पीला, पेट में दाढ़ी-मूँछ

(कद्दू)

क्या है जिसे हम बन्द तो करते हैं, पर खोलते नहीं?

(आँखें)

प्रश्न यह है कि उत्तर क्या है?

(उत्तर एक प्रश्न है।)

देखो भाई अजब-सी बात,
नीचे फल और ऊपर घास

(अनानास)

सुडोकू-33

9	7		8		3	6	5	
6	5	2	9		7		3	8
	3	1	2		5	7		4
3	2		4	5	9		6	1
	1		7		8	2	4	
	9				1	5	7	
		5				4	2	7
7			5	8	2			6
2	6						8	

दिए हुए बॉक्स में 1 से 9 तक के अंक भरने हैं। आसान लग रहा है न? पर ये अंक ऐसे ही नहीं भरने हैं। अंक भरते समय तुम्हें यह ध्यान रखना है कि 1 से 9 तक के अंक एक ही पंक्ति और स्तम्भ में दोहराए न जाएँ। साथ ही साथ, पीले बॉक्स में तुमको नौ डब्बे दिख रहे होंगे। ध्यान रहे कि हर डब्बे में भी 1 से 9 तक के अंक दुबारा न आएँ। कठिन भी नहीं है, करके तो देखो। जवाब तुमको अगले अंक में मिल जाएगा।

चित्र पहेली

बाएँ से दाएँ

ऊपर से नीचे

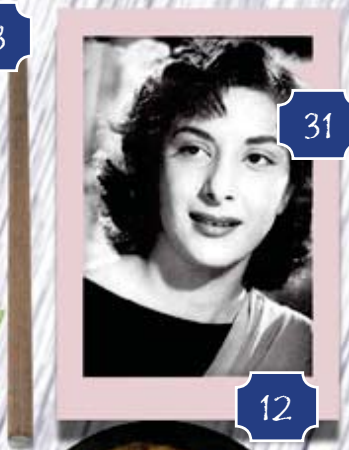

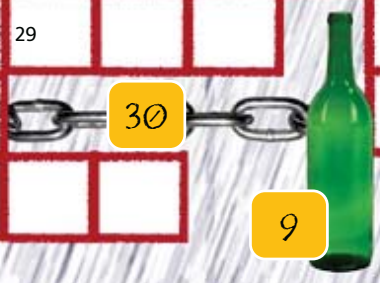

माथापच्ची

जवाब

1. (5+5) x (5+5) = 100

2. वही 3 मोमबत्तियाँ बचेंगी जो बुझ गई थीं। बाकी की तो जल जाएँगी।

3.

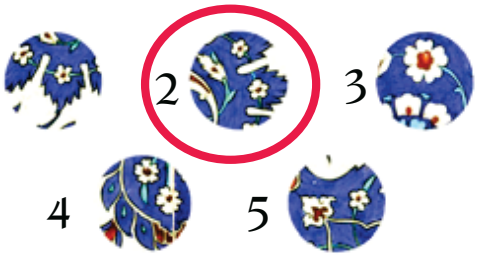

4.

5.

- राशिद की बकरी वाकई में बहुत प्यारी है।
- तुम अगर तलाश करोगे तो कोई ना कोई सुराग ज़रूर मिलेगा।
- आग रात में लगी थी।
- मिंकु का सिर साबुन से धोना।
- खुदाई में पत्थर के नुकीले हथियार भी मिले।

6. दोनों ने आने-जाने वालों की संख्या बराबर ही गिनी। निया फाटक के पास खड़ी होकर आने-जाने वाले दोनों को ही गिनती गई। और चूँकि अर्श आगे-पीछे यानी दोनों दिशाओं में घूम रहा है इसलिए वह भी आने-जाने वाले दोनों की ही गिनती कर रहा है।

7.

जुलाई की चित्रपहेली का जवाब

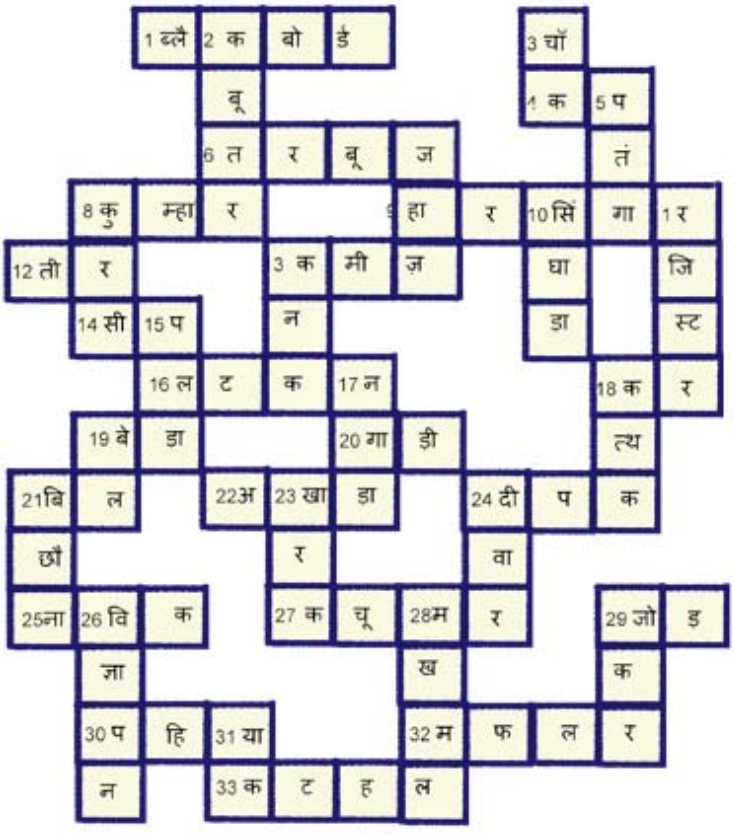

सुडोकू-32 का जवाब

8	2	4	1	9	7	3	6	5
5	6	3	4	8	2	9	7	1
7	1	9	6	3	5	8	2	4
6	9	5	7	1	8	2	4	3
4	7	8	2	5	3	6	1	9
2	3	1	9	4	6	7	5	8
1	8	7	3	6	4	5	9	2
9	5	2	8	7	1	4	3	6
3	4	6	5	2	9	1	8	7

अनोखी किताब

क्या तुमने कभी कोई ऐसी किताब पढ़ी है जिसे पढ़ने के लिए तुम्हें पहले पहेलियाँ सुलझानी पड़ी हों? ऐसी एक किताब सच में है। यह कहानी है लियोनार्दो दा विंची के एक शिष्य के बारे में जिसे विंची के नए आविष्कार कोडेक्स के बारे में पता चलता है। लकड़ी की बनी इस किताब में पाँच पन्ने हैं। और हर पन्ना पलटने के लिए तुम्हें पहेली सुलझानी होगी। यह किताब एक जाल की तरह है। अगर तुम यह सोच रहे हो कि दूसरी या तीसरी पहेली को पहले सुलझा लूँ तो यह भी नहीं हो सकता। पहली पहेली को सुलझाए बिना दूसरा पन्ना खुलेगा ही नहीं। ये किताब कहानी और पहेलियों का एक बहुत ही मज़ेदार और अनोखा मिश्रण है।

बिल्लियों की अपनी सीढ़ियाँ

स्विट्ज़रलैंड एक ऐसा देश है जहाँ लगभग हर बिल्डिंग में बिल्लियों के घर से बाहर जाने के लिए अलग-से सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। पिछले साल एक जर्मन फोटोग्राफर और आर्किटेक्चर प्रशंसक ब्रिगित्त श्यूस्टर ने इन सीढ़ियों को अपनी किताब *स्विस कैट लैडर्स* में कैद किया। वे जब बर्न, स्विट्ज़रलैंड गईं तो हरेक बिल्डिंग में बनी छोटी सीढ़ियाँ देखकर उनको बड़ी हैरत हुई। लेकिन स्विसवासियों का कहना है कि ये उनका तरीका है बिल्लियों की तरफ अपना प्यार और खयाल दिखाने का। ये सीढ़ियाँ लोग खुद बना सकते हैं, या किसी और से बनवा सकते हैं या फिर बनी-बनाई भी खरीद सकते हैं।

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म. प्र./भोपाल/261/2018-20

लाल कलंगी

प्रभात
चित्र: निराली लाल

हाँ मुर्गे ने बदली चाल
बैठा हरे नीम की डाल

चीखा फुला-फुलाकर गाल
सबसे सुन्दर रंग है – लाल

क्योंकि क्योंकि क्योंकि
ऐसी ताकत झौंकी

इतने ज़ोर-से बाँग दी
इतने ज़ोर-से बाँग दी

धरती के सारे मुर्गों ने
उस दिन से सारे मुर्गों ने

सिर पर सुन्दर लाल रंग की
लाल कलंगी टाँग ली

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म प्र से प्रकाशित एवं आर के सिक्युप्रिन्ट प्रा लि प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इण्डस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: विनता विश्वनाथन